सर्वदानन्द-विश्व-ग्रन्थमाला
SARVADANAND UNIVERSAL SEREIS

स्वर्गत (The Late)
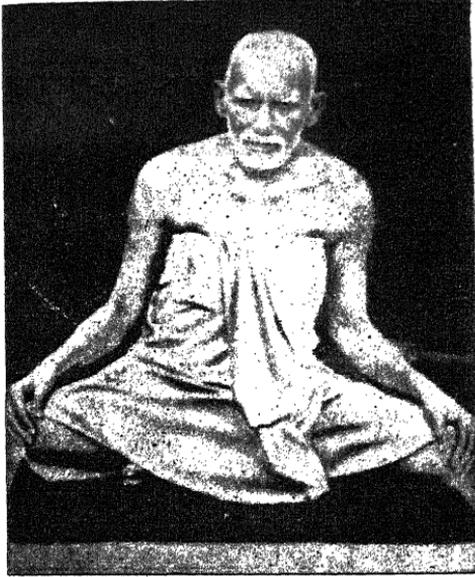
श्री स्वामी सर्वदानन्द
Shri Swami Sarvadanand

सं. १९१६-९९ (1859-1942)

ग्रन्थ—१७

Volume—XVII

ग्रन्थमाला-स्मारक-समर्पण-सङ्कल्पः

★ पञ्चापे लब्धजन्माऽऽसीद् होश्यारपुर-पार्श्वतः ।

महात्मा सर्वदानन्दस् सिद्ध-तपा यतीश्वरः ॥१॥

★ वेद-वेदाङ्ग-सच्छ्रद्धो वेदान्त-शान्त-मानसः ।

सत्यधर्म-प्रचारात्म-लोकसेवा-दृढव्रतः ॥२॥

★ सत्प्रेरणाभिराशीभिर् यः खलु मुनि-सत्तमः ।

अस्माकं सर्वदा मान्यः संस्थानस्याऽस्य पोषकः ॥३॥

★ तस्याऽस्तु सुचिर-स्मृत्यै पूजायै च मनस्विनः ।

सद्ग्रन्थ-विश्व-मालेयं श्रद्धया परयाऽर्पिता ।

इति निवेदयेते तत्-सम्पादक-प्रकाशकौ ॥४॥

संपादक:—

विश्वबन्धुः शास्त्री, ऍम. ए., ऍम. ओ. ऍल.

प्रकाशक:—

विश्वेश्वरानन्द-वैदिक-संस्थान

विश्वेश्वरानन्द संस्थान प्रकाशन—१३८

संसार को चुनौती

Secrets of personal success

(मनोवैज्ञानिक उपायों द्वारा व्यक्तित्व के नवनिर्माण का मार्ग-दर्शक)

लेखक :—

प्रो॰ रामचरण महेन्द्र, ऍम॰ ए॰

होशिआरपुर

विश्वेश्वरानन्द-वैदिक-संस्थान

१९५९

सद्ज्ञान के प्रसारक, आध्यात्मिक साहित्य के प्रेमी

श्रद्धास्पद आचार्य विश्वबन्धु जी

की

सेवा में समर्पित

—रामचरण महेन्द्र

प्रकाशकीय

अध्यापक रामचरण महेन्द्र अंग्रेज़ी के अध्यापक होते हुए भी वर्षों से हिन्दी की सतत सेवा में निरत हैं। आप उच्च कोटि के सांस्कृतिक लेखक हैं और प्रायः सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में आप के लेख छपते हैं। आप कई पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन भी करते हैं। आपने एकाङ्की साहित्य पर विशेष रूप से गवेषणात्मक कार्य किया है। अध्यात्म, मनोविज्ञान तथा स्वास्थ्य संबन्धी विषयों में आपकी बड़ी रुचि है, जिस के फलस्वरूप इन विषयों से संबन्धित आप के बहुत से ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की भित्ति पर खड़ा किया गया, आपका प्रस्तुत ग्रन्थ मानव-चरित्र-विकास-कारिणी उदात्त प्रेरणाओं से भरा है। इस में आप ने पहिले कई पत्रों में छपे अपने लेखों को ही पुनः परिष्कृत करके संगृहीत किया है।

हमें इस बात का विश्वास है कि इस ग्रन्थ के प्रकाशन द्वारा हमारी सर्वदानन्द ग्रंथमाला की शोभा बढ़ेगी और पाठक वर्ग स्वयं अपने अनुभव के आधार पर हमारे इस विश्वास की पुष्टि कर सकेंगे।

साधु-आश्रम, होशिआरपुर
२० आषाढ़, २०१३

देवदत्त शास्त्री
प्रकाशनाध्यक्ष

भूमिका

जो समय व्यतीत हो गया, उसके लिए व्यर्थ ही रोने कलपने और निराश होकर हाथ-पाँव ढीले करने से कोई लाभ नहीं है? जो गया, वह नष्ट हो गया; सदा सर्वदा के लिए मृत्यु को प्राप्त हुआ। उस मरी खाल को पीटने से कुछ भी प्राप्त होने वाला नहीं है। केवल उस समय पर आपका अधिकार है, जो अब आपके हाथ से निकल रहा है। प्रति दिन, घंटा, मिनिट और बीतता हुआ सैकेण्ड आपके हाथ से निकलते हुए जीवन का एक छोटा सा टुकड़ा है। विद्युत् से भी तीव्रतर गति से यह भागा जा रहा है। जो आज वर्तमान है, वह देखते-देखते भाग कर अतीत के अंधकारमय गर्त में विलीन हो जाने वाला जीवन है। भविष्य और केवल भविष्य ही आपका है।

भविष्य अगणित आशाएँ लिए आपका हृदय मोहने वाला आकर्षक जीवन है। इन फूलों की सुगन्ध अभी से, इतनी दूर से आप को मोहित कर रही है। इस आशा-अभिलाषाभरे जीवन को लेकर आप उत्थान और उन्नति की नवीन योजनाएँ बना सकते हैं। इस पर आप निर्भर रह सकते हैं।

यह ठीक है कि हमारा प्रारम्भिक जीवन, जिस में हम खूब कार्य करते थे, बीत गया है। संभवतः हमारा यौवन, जब हमारी शक्तियाँ अपनी चरम सीमा पर थीं, नष्ट हो गया। फिर भी आपका भविष्य परमेश्वर ने कोई महान् कार्य कराने के लिए रखा है। उसी की ओर आप क्रमशः बढ़े चले जा रहे हैं। एक अलक्षित दैवी नियम आपको

उसी दैवी सदुद्देश्य की ओर बढ़ा रहा है। उसी महान् कार्य के लिए आपको निज व्यक्तित्व का विकास कर लोक-विजय करना है।

जो बच्चे हैं, उनका भविष्य बनने के लिए पड़ा है—विस्तृत और महत्त्वाकांक्षापूर्ण। जो युवक हैं, वे प्रतिदिन प्रतिपल भविष्य को गढ़ रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक में महत्त्वाकांक्षी युवक आत्मनिर्माण की यथेष्ट सामग्री पाएँगे और संघर्षों को पार कर शक्ति और सामर्थ्य संचित कर सकेंगे—ऐसी आशा है।

गवर्नमेंट कॉलेज,
कोटा (राजस्थान)

प्रो. रामचरण महेन्द्र एम. ए.

विषय-सूची

संसार को चुनौती

अपनी दुरवस्था के जिम्मेदार आप स्वयं हैं

अनेक व्यक्तियों की यह भ्रान्त धारणा बन गई है कि वे किसी बाह्य अथवा ऊपरी दिव्य शक्ति या भाग्य द्वारा अपनी उन्नति के पथ पर आरूढ़ होने से रुके हुए हैं। कोई ऐसी गुप्त वस्तु है, जो उन्हें समाज में उन्नति के मार्ग पर आगे नहीं बढ़ने दे रही है। जादू, मन्त्र या अन्ध पूजन द्वारा असंख्य रुपया तथा शारीरिक श्रम द्वारा वे इस अदृश्य बाधा को दूर करने का प्रयत्न करते हैं। अनेक व्यक्तियों की यह शिकायत रहती है कि उनके क्षेत्र में, दफ्तर या विभाग में ऐसे अफसर हैं जो ईर्ष्या-द्वेष वश उन्हें आगे नहीं बढ़ने दे रहे हैं।

एक विभाग के क्लर्क लिखते हैं कि उनके विरोध में एक पार्टी बनी हुई है जो उन्हें आगे नहीं बढ़ने दे रही है। उन्हें हठात् उसी वेतन पर रखा जा रहा है और आगे बढ़ने की कोई आशा नहीं है। एक विवाहित सज्जन लिखते हैं कि पत्नी के रूप में एक नई सहायिका और कमाने वाली नारी पा कर भी उनका जीवन-स्तर ज्यों का त्यों है। आय में वृद्धि होने के साथ व्यय भी उसी अनुपात में बढ़ गया है और जीवन में आनन्द अथवा आर्थिक स्वावलम्बन नहीं आया है। कुछ प्राइवेट संस्थाओं में कार्य करने वाले मध्यम वर्ग के बाबू लोग फर्म के बुरे व्यवहार, ग़रीबी, वेतनवृद्धि न होने की प्रायः शिकायतें किया करते हैं। कोई भी व्यक्ति अपनी वर्तमान सामाजिक या आर्थिक स्थिति से संतुष्ट नहीं प्रतीत हो रहा है। वे प्रायः सोचते हैं कि कठोर परिश्रम के

उपरान्त भी उन्हें समृद्धिशील जीवन व्यतीत करने की कोई आशा नहीं है। उन्हें कुछ न कुछ ऐसा ऊपरी बहाना मिल गया है, जिसके कारण वे अपने आप को गिरा या रुका हुआ मान बैठे हैं।

एक वर्ग उन व्यक्तियों का है जो हीनावस्था का तो अनुभव करते हैं किन्तु यह निश्चित नहीं कर पाते कि उनकी उन्नति को रोकने वाला या पीछे रखने वाला कौन है या क्या है? उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि दुर्भाग्य या अवरोध जैसी कोई अदृश्य वस्तु अवश्य होनी चाहिए, जो उन्हें आगे नहीं बढ़ने देती।

वास्तव में मनुष्य को उसकी भावी उन्नति या किसी विशेष क्षेत्र में बढ़ने से रोकने वाली कोई भी बाह्यशक्ति या व्यक्ति नहीं है। भाग्य हमारे कार्य शक्तियों और साहस का दूसरा नाम है। अपनी शारीरिक अथवा मानसिक निर्बलता, आलस्य अथवा कर्म-हीनता के कारण मनुष्य अपनी असफलता, अवनति अथवा पतन को यत्र तत्र दूसरों के ऊपर थोपता है; दूसरों को अपने दुःख का कारण समझता है। आत्म-हीनता, पुरुषार्थ की न्यूनता अथवा श्रम की कमी स्वयं उसके अन्दर आदतों में विद्यमान रहती है। उनकी प्रतिक्रियाएँ भिन्न-भिन्न रूपों में भिन्न-भिन्न समय उसके जीवन एवं व्यवहार में प्रकट हुआ करती हैं और उसके विकास में विरोध उत्पन्न करती हैं।

अपनी दुरवस्था के ज़िम्मेदार वास्तव में स्वयं आप ही हैं; दूसरा कोई नहीं है। यदि आप दूसरों को अपने पतन या निम्न स्थिति का ज़िम्मेदार मानते हैं, तो इसका दूसरा तात्पर्य यह है कि आप जीवन की कठोर वास्तविकता और श्रम से दूर भाग जाना चाहते हैं। आप डट कर साहस और शक्ति से अपनी परिस्थितियों से संघर्ष नहीं करना चाहते। आप के शरीर, मन और आत्मा में महान् गुप्त सामर्थ्य छिपे पड़े हैं, उन्हें पर्याप्त प्रयत्न एवं परिश्रम द्वारा आप प्रकट करना नहीं

चाहते । संभव है, भावावेश में आकर आप कोई ऐसा कार्य हाथ में ले लें, जो कुछ दिन तक उन्नतिशील रहे, किन्तु आवेश के समाप्त होते ही शैथिल्य दबा लेगा । आवश्यकता इस बात की है कि आप की उन्नति की योजना तथा उसे कार्यान्वित करने में आपकी लगन निरन्तर चलती रहे; किन्तु इससे भी अधिक जरूरी यह है कि आप अपनी भावनाओं में अपनी गुप्त शक्तियों में विकास उत्पन्न करें । आत्म-श्रद्धा जाग्रत करें । श्रद्धा जगज्जननी जगदम्बा और विश्वास जगत् पिता का रूप है । इन दोनों का विकास आप के हृदय में होना चाहिए ।

—:o:—

सब विभूतियाँ आपको प्राप्त हैं

क्या आप अपने विचार और दृष्टिकोण को निश्चित करने में यह गलती कर रहे हैं कि उन्हें दूसरों की अपेक्षा हीन समझते हैं? क्या आप दूसरों को अपने से मन, बुद्धि और आत्मा में ऊंचा और अपने को नीचा समझते हैं?

यह ठीक है कि अपने बारे में यों ही बढ़ चढ़ कर थोथी सार-हीन बातें बनाना व्यर्थ है; एक दुर्गुण है। कोई ऐसे शेखीखोरे व्यक्तियों को पसन्द नहीं करता जो ऊलजलूल व्यर्थ की बातें बनाया करते हैं। यह प्रतिकूल छोर है और इस तक पहुंच जाना भी मनुष्य के दुर्भाग्य का चिह्न है।

क्या आप कभी अपने मुख से ये दीन-हीन विचार निकाला करते हैं—

"मेरा व्यवसाय इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना दूसरों का है।

"मेरा स्वास्थ्य बहुत खराब है; मुझ से कुछ होना जाना नहीं है।

"मेरे घर में बहुत मरम्मत की आवश्यकता है और मैं उस का कोई प्रबन्ध कहीं कर सकता।

"मैं ठीक तरह व्याख्यान न दे सकूंगा; क्योंकि मुझे अपने विषय का पर्याप्त ज्ञान नहीं है।"

इन सभी उक्तियों से आपकी दीन-हीन विचार-धारा प्रकट होती

है और आप की उन्नति के लिए यह अतीव आवश्यक है कि आप इस हीन विचार-धारा को तुरन्त त्याग दें।

आप मनुष्य हैं, जो संसार के सब जीवों का सिरमौर है।

मनुष्य से परे और सुन्दर, सशक्त, उत्तम जीवन इस संसार में नहीं है। मेरे लिए मनुष्य से परे कोई भाव नहीं; कोई विचार नहीं। मनुष्य और केवल मनुष्य ही दुनियाँ की सारी वस्तुओं और विचारों का स्रष्टा है। वह असंभव को संभव बनाने वाला और प्रकृति की सम्पूर्ण शक्तियों का भविष्य में होने वाला एक मात्र अधिकारी और मालिक है। फिर निराशा क्यों?

मनुष्य होने पर गर्व कीजिए और दूसरे मनुष्यों को सेवा, सहयोग दीजिए एवं प्रेम कीजिए। ऐसा करने से आप की आत्मीयता का दायरा बढ़ जायेगा और आनन्द के स्रोत खुल जायेंगे।

दूसरों की उन्नति की सराहना कीजिए; भरपूर प्रशंसा कीजिए। प्रशंसा से मनुष्य की गुप्त आत्मिक और मानसिक शक्तियाँ विकसित होती हैं। परमावश्यक यह है कि यह सराहना का कार्यक्रम आप स्वयं अपने से ही प्रारम्भ करें।

प्रत्येक धार्मिक तथा उत्साहवर्द्धक साहित्य बताएगा कि आप एक शक्ति-सम्पन्न, दैवी विभूतियों के स्वामी व्यक्ति हैं और आप का व्यक्तित्व अभूतपूर्व, एक मात्र अस्तित्व है।

कोई अन्य व्यक्ति आपके समान नहीं है। जो विभूतियां आप को प्राप्त हैं, वे दूसरों के पास नहीं हैं। अपनी इन्हीं गुप्त शक्तियों को पहचानो और विकसित करो।

उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रागात्तम आ ज्योतिरेति।
आरैक् पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥
(ऋग्वेद१-११३,१६)

उठो ! स्फूर्तिदायक नूतन प्रभात आ गया । अन्धकार का नाश हो गया है, प्रकाश चारों ओर फैल चुका है । नूतन प्रभात ने समृद्धि का नया मार्ग दिखाया है । आओ, मिल कर उस पथ पर बढ़ चलें ।

संसार के अनेक व्यक्तियों को प्रारम्भ में बड़े कष्ट उठाने पड़े थे. किन्तु उन्हें संसार की कठोरता ने ही उत्साह प्रदान किया । वे शक्तियों का विकास करते रहे; प्रत्येक कार्य ने उन्हें सतर्कता, जागरूकता, कार्य तत्परता की शिक्षा दी । वे अपने जीवन के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग करते रहे; आलस्य और निष्क्रियता से बचे रहे; अन्ततः समुन्नत बने । उन्हें बाहर से कोई शक्ति या सहायता प्राप्त नहीं हुई, वरन् आन्तरिक रूप से ही सामर्थ्य प्राप्त हुई ।

मनुष्य शक्ति का पुञ्ज है, किन्तु इस शक्ति का आदिस्रोत मनुष्य के अन्तःकरण में है । वही उसे निरन्तर प्रोत्साहित करता है; निराशा में आशा की ज्योति दिखाता है; बिगड़े को बनाता है; गिरे हुए को उठाता है । जब सब बाहरी सहायतायें टूट जाती हैं, तब भी यह आन्तरिक सहायता का आदिस्रोत भरा पूरा रहता है ।

एक विद्वान् ने कहा है, "सर्वोच्च का स्थान सदा खाली रहता है । उसे भरने के लिये प्रत्येक समय उपयुक्त व्यक्ति की आवश्यकता होती है । उसे भरने के प्रयत्न में प्रत्येक व्यक्ति अपना प्रयत्न कर सकता है ।"

असंख्य व्यक्ति निम्न स्थिति में पड़े पड़े किसी ऐसे व्यक्ति, संस्था, अदृश्य शक्ति की प्रतीक्षा में समय नष्ट कर रहे हैं । वे चाहते हैं कि कोई उन्हें पकड़ कर उठा ले या टेका लगा दे । जैसे लूला लंगड़ा व्यक्ति अपने लिये बैसाखी या लकड़ी का सहारा चाहता है वैसे ही वे मानसिक या बाह्य बैसाखियों की बाट देखते देखते जीवन व्यतीत कर देते हैं । यह एक प्रमाद है । कमजोरी के कारण एक अन्धकार उन पर छाया रहता है।

हेनरी वार्ड वीचर लिखते हैं "हमें कल्पना के क्षेत्र में अधिक विहार नहीं करना चाहिये प्रत्युत यह देखना चाहिये कि हम क्या हैं। हमारी असली शक्तियाँ, योग्यतायें क्या हैं ? यदि आपमें आन्तरिक सामर्थ्य नहीं है, आप स्वयं अपने पैरों पर खड़े नहीं हो सकते, तो आखिर आप को कौन उठाने वाला है ?"

सफलता के द्वार की कोई निश्चित कुञ्जी नहीं है, जो आपके हाथ में अनायास ही दे दी जाय। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं ही इस कुञ्जी का निर्माण करना पड़ता है। कोई दूसरा हाथ पकड़ कर आप को इस द्वार में प्रविष्ट नहीं करा सकेगा। आप स्वयं ही इस कुञ्जी का निर्माण कीजिये। स्वयं अपनी परिस्थिति को समझिये और इन्हीं परिस्थितियों में आगे बढ़िये। प्रभावशाली व्यक्तियों, मित्रों सम्बन्धियों की सहायता से आप सफलता के द्वार में प्रविष्ट नहीं होंगे !

एक बार लिंकन ने कहा—"मैं पढ़ लिख कर शक्तियाँ अर्जित कर रहा हूँ।"

उनसे पूछा गया, "किस के लिये ? तुम जैसे दीन, हीन व्यक्ति के लिये क्या भविष्य है ?"

लिंकन ने कहा—"मैं अमेरिका का प्रेसिडेण्ट बनना चाहता हूँ। जब तक वह उत्तरदायित्व मुझ तक आये, मैं उसके लिये तैयार हो जाना चाहता हूँ।"

यह बात सुन कर उनकी हितैषिणी मिसेज क्रोफर्ड हँस पड़ी थीं। उन्हें यह हास्यास्पद प्रतीत हुआ कि यह ग़रीब बदसूरत व्यक्ति क्या कभी अमेरिका का प्रेसिडेण्ट बन सकेगा ? आप स्वयं विचार कीजिये लिंकन जैसा साधारण क्या किसी की सिफारिश से प्रेसिडेण्ट बन सकता था ? क्या वह रिश्वत दे सकता था ? क्या उस के पास धन-सम्पदा इत्यादि थी ? नहीं ! कुछ नहीं ! उसकी सारी सम्पत्ति उसकी विकसित

शक्तियां ही थीं, जिन्होंने संसार को आश्चर्य में डाल दिया। उन्हीं असाधारण शक्तियों के बल पर लिंकन अमेरिका में प्रेसिडेण्ट के पद पर प्रतिष्ठित हुआ था।

शक्तियों का विकास ही उसकी सफलता का रहस्य था। ये शक्तियाँ बाहर से उसके पास नहीं आई थीं। ये उस में पहले से ही मौजूद थीं। उसने उन्हीं को सतत परिश्रम, निरन्तर अभ्यास और जागरूकता से विकसित किया था। स्वयं उसे चुपचाप घोर परिश्रम करते रहना पड़ा था।

यदि आप खुद अपनी शक्तियों—मानसिक शारीरिक, आर्थिक, आध्यात्मिक को-विकसित नहीं करेंगे, तो स्मरण रखिये यों ही निम्न स्थिति में पड़े सड़ते रहेंगे। प्रत्येक बड़े व्यक्ति को, प्रत्येक ऊंचा उठने वाले महा मानव को स्वयं अपना मार्ग बनाना पड़ा है। दूसरों से उन्हें जो सहायता प्राप्त हुई, वह उस सहायता के मुकाबले में कुछ न थी, जो स्वयं उन्होंने अन्दर से प्राप्त की थी।

आप देखते हैं, अमीर व्यक्तियों के आरामतलबी, धन-ऐश्वर्य में पलने वाले बच्चे प्रायः अविकसित रह जाते हैं। विलास का वातावरण उनकी कार्यशक्तियों को पंगु कर देता है। इन आलसी, निकम्मे, अविकसित बच्चों के हाथ में धन-सम्पदा आते ही छिन्न-भिन्न हो जाती है। अमीर ग़रीब बनते हैं तो ग़रीब अपनी शक्तियों को विकसित कर उन्नति के शिखर पर पहुंचते हैं। उत्थान या पतन के चक्र को चलाने वाली वस्तु हमारी तथा हमारे बाद में आने वाली सन्तान के मानसिक विकास एवं जागरूकता या इनके अभाव पर ही निर्भर रहती है। वास्तविक सम्पदा वह नहीं जो आप रुपया पैसा, बैंक बैलन्स, मकान ज़ायदाद के रूप में छोड़ते हैं। वास्तव में, वह तो आप के मस्तिष्क में एकत्रित है। वह उन शक्तियों में है, जिसका विकास आप को करना है। मनुष्य की सर्वोच्च शक्ति, सम्पदा और प्रेरणा आन्तरिक हैं। उसे बाह्य जगत् में ढूँढना एक मूर्खता है।

मनुष्य स्वयम् ही अपना भाग्य-निर्माता है

जीवन के प्रति जैसी हमारी भावना होगी वैसा ही हमारा मार्ग भी मृदु अथवा कर्कश होगा। मनुष्य जो सुखी और प्रसन्न है उसका कारण है कि वह शुभ भावना में मग्न रहता है। यदि कोई व्यक्ति दुखी है तो इसका कारण यही है कि वह दुःख, निराशा एवं क्षोभ की भावना में सदैव फंसा रहता है। सुख-दुःख मन की दो भूमिकाएं हैं और दोनों की प्रतीति बहुत कुछ मनुष्य के स्वभाव पर निर्भर है। एक व्यक्ति प्रारम्भ से ही आशावादी है, वह सर्वत्र भला ही भला देखता है, प्रति-क्षण दिव्य विचारों से तन्मय रहता है, श्रद्धापूर्वक शुभ भविष्य की ओर निहारता है। दूसरा व्यक्ति प्रतिकूल अथवा अप्रिय प्रसंगों में लिप्त रह कर अन्य मनुष्यों पर दोषारोपण करता है, अयोग्य वृत्तियों के प्रपंच में ग्रस्त रहता है और सदैव खिन्न रहता है। दोनों स्वयं अपने जीवन के उत्तरदाता हैं।

जब तक मनुष्य अपनी भावना में परिवर्तन नहीं करता, अपने भीतरी शत्रुओं पर विजय प्राप्त नहीं करता, तबतक वह निज हितैषी नहीं बन सकता। जबतक अपनी मानसिक प्रवृत्ति में हम ध्यानपूर्वक परिवर्तन नहीं कर देते, तबतक हम परिस्थितियों के शिकार ही बने रहेंगे। मनुष्य संसार में चाहे जिस स्थान पर हो, शुभ भावना सदैव उत्तम है। अनिष्ट से अनिष्ट प्रभावों से मुक्त होने का मार्ग शुद्ध भावना ही है। जो मनुष्य चिन्ताओं, दुःखों, क्लेशों से पीड़ित रहता है, वह

अपने अंतःकरण की निकृष्ट भावनाओं को तिलाञ्जलि देकर उच्च प्रकाशमय स्थिति में प्रवेश कर सकता है।

तीव्र प्रवाह में बहते हुए तिनके की तरह बहाव में बह जाने के लिए तुम नहीं बने हो। परमेश्वर ने तुम्हें पुष्ट हाथ दिए हैं जिनके द्वारा तुम स्वयं मार्ग निश्चित कर सकते हो। अपने भाग्य की रचना तुम स्वयं करते हो। भाग्यचक्र की गति में तुम्हारा अपना दायित्व है। जो तुम बोते हो वही काटते हो। तुम्हारी उन्नति का मार्ग सुगम है या दुर्गम, वह तुम्हें स्वयं ही तय करना है। तुम्हारे मस्तक में अद्भुत प्रतिभा के बीज पड़े हैं, तुम उन्हें उद्योग का जल दे अंकुरित, पल्लवित एवं पुष्पित कर सकते हो। अपनी अन्तरात्मा को तुम्हें स्वयं ही जाग्रत करना है। कोई बाहर का आदमी तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता—जब तक तुम स्वयं अपनी सहायता के लिए कटिबद्ध न हो जाओ।

संसार के अन्य व्यक्तियों ने जो कुछ सम्पादन किया है, उसे करना कदापि दुष्कर नहीं है। सोचो, तुम किस बात में पिछड़ रहे हो? तुम्हें ज्ञात होना चाहिए कि परमेश्वर ने सब को समान शक्तियां प्रदान की हैं, ऐसा नहीं कि किसी में अधिक किसी में न्यून हों। किसी विशेष शक्ति से कार्य न लेकर हम उसे पंगु कर डालते हैं। दूसरी शक्ति को कार्य में लगाकर परिपुष्ट एवं विकसित कर लेते हैं। अपनी शक्तियों को जाग्रत तथा विकसित कर लेना या उन्हें शिथिल, पंगु, निश्चेष्ट बना डालना स्वयं तुम्हारे हाथ में है। यदि तुम किन्हीं विशेष शक्तियों को केवल ईश्वरप्रदत्त प्रसाद और ईश अनुग्रहमात्र मान बैठे हो या समझने लगे हो कि वे हमारी पहुँच से दूरस्थ है तो सचमुच तुमने बड़ी भूल की है। संसार की प्रत्येक वस्तु पर, प्रत्येक प्रतिभासम्पन्न, आश्चर्यचकित कर डालने वाली चीज़ पर तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है। यदि तुम मन की गुप्त महान् सामर्थ्यों को जाग्रत कर लो और जीवन-लक्ष्य की ओर उद्योग, और उत्साहपूर्ण आग्रह से अग्रसर होना सीख लो तो जो चाहो

बन सकते हो। मनुष्य जैसा बनने की आकांक्षा करता है वह अवश्य बन सकता है—यदि दृढ़निश्चय द्वारा अपनी प्रतिभा को जाग्रत कर ले।

अतएव प्रतिज्ञा कर लीजिए कि हम अपनी शक्तियों को ऊंची से ऊंची बना लेंगे, प्रतिदिन अपनी योग्यता, अपनी विलक्षणता में अभिवृद्धि करते रहेंगे। हमारी आत्मा में जो ईश्वरीय गुण विद्यमान हैं उनपर से आवरण उठाते रहेंगे। तभी आप अपने यथार्थ रूप से परिचित हो सकेंगे।

नवीन भावना की सृष्टि करना ही नया कदम उठाना है। तुम अपने विचारों में परिवर्तन करो, अर्थात् अपने अन्तःकरण की स्थायी वृत्ति को बदल दो। अभी तक तुम जिन भावनाओं में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हो उनके स्थान पर नई भावनाओं को जमाओ। नए विचार, नई भावनाएं, नए दृष्टिकोण तुम्हें कहां मिलेंगे? उत्तम पुस्तकों का अध्ययन करो, सत्संग करो और ऐसे व्यक्तियों से मेल-मिलाप करो जो मन की उच्च भूमिका में निवास करते हैं। परमेश्वर में मन लगाओ और उत्कृष्ट जीवन की भावना में रमण करो। जीवन के जिस स्थल में अब पड़े हो उसको तिलांजली दो और विचारों को ऊंचे उठाओ। निशाना मारते समय सदैव कुछ आगे मारा जाता है। तुमने अपने जीवन को जैसा निर्माण करना चाहते हो उससे कुछ आगे का, उत्कृष्ट, सर्वोत्तम आदर्श अपने सम्मुख रखो और फिर सूई की तरह अपने आदर्श में गड़ जाओ।

अनेक व्यक्तियों में अनेक प्रकार की योग्यताएं और शक्तियां हैं, किन्तु उनका पूर्ण उद्भव एवं प्रकाश करने के लिए धैर्यपूर्वक श्रम करने की आवश्यकता होती है। जबतक मनुष्य धैर्य तथा निरन्तर परिश्रम द्वारा प्रत्येक वस्तु का निरीक्षण नहीं करता तब तक वह उसके मूल तत्त्वों तक नहीं पहुँच सकता। हमारा शरीर एक बाग है और हमारी इच्छाशक्ति

उसमें माली । यदि हम उसमें कुविचारों के बबूल बोयेंगे तो कांटे ही उत्पन्न होंगे और यदि सुविचारों के आम बोयेंगे तो स्वादिष्ट फल प्राप्त होंगे । यदि हम अकर्मी एवं सुस्त होंगे तो उस उत्तम भूमि को खराब कर देंगे और यदि परिश्रमी होंगे तो उसमें खाद देकर उर्वरा बना लेंगे, ये सब बातें हमारी इच्छाशक्ति पर निर्भर हैं । सबसे दयनीय स्थिति तो उस व्यक्ति की है जो दूसरों के विचारों का दास है, जो दूसरों के कहे अनुसार जीवन को निकृष्ट या उत्कृष्ट समझता है, जिसने अपने जीवन की बागडोर दूसरों के हाथ में पकड़ा दी है और जो विचारपरवशता द्वारा कठपुतली की तरह नृत्य किया करता है ।

अपने विचारों का चुपचाप निरीक्षण करो । देखो, दिन में कैसे-कैसे विचार तुम्हारे मस्तिष्क में चक्कर लगाते हैं, तुम्हें किस प्रकार घुमाते-फिराते हैं, हृदय में कैसी मनःस्थिति उत्पन्न करते हैं । कौनसा विचार तुम्हारी मनःशान्ति नष्ट करता है और तुम्हें क्षुब्ध बनाता है ।

जब कभी तुम्हारे सामने कोई जटिल समस्या उपस्थित हो तो अपनी नीर–क्षीर–विवेक करने वाली शक्ति से प्रश्न करो । सुनो उसका क्या आदेश है ? वह तुम्हें किस ओर निर्देश करती है ? तुम्हारी आत्मा से बाहर कोई अन्य ऐसी शक्ति नहीं है जो तुम्हारी सहायता कर सकती हो या तुम्हारी हानि करने में समर्थ हो । तुम्हारी निजी इच्छाओं के अतिरिक्त संसार की ऐसी कोई ताकत नहीं जिसका वश तुम्हारे ऊपर चल सकता हो । यदि तुम दुख देखते हो तो यह तुम्हारी आत्मा का कालुष्य ही है, यदि तुम सुख पाते हो तो यह वातावरण भी तुम्हारी आत्मा के दिव्य प्रकाश से हुआ है ।

क्या तुमने कभी इस प्रश्न पर भी विचार किया है, कि तुम्हारी शक्ति का केन्द्र कहां है ? तुम्हारी आत्मा ही संसार की समग्र शक्तियों का आदिविकास-स्थान है और इसी के वश समग्र संसार है । जिस जिज्ञासु को अपनी आत्मा की अद्भुत शक्तियों का सम्यक् ज्ञान हो जाता है

उसके ऊपर अन्य किसी सत्ता का प्रभाव नहीं पड़ सकता। ऐसा व्यक्ति अपने पथ से विचलित नहीं होता, मार्ग की कठिनाइयों को रौंदता चलता रहता है।

दूसरा व्यक्ति वह है जो समझता है कि बाह्य संसार में कोई ऐसी शक्ति है जो उसके जीवन से सम्बन्ध रखती है तथा उसे अस्तव्यस्त किया करती है। वह यह मानता है कि शक्ति का केन्द्र हमारे बाहर स्थित है और उसी के अधीन होकर हमारा जीवन चलता है। वह नाना प्रकार की व्याधियां, यातनाएं तथा कठिनाइयां सहा करता है और अपने को नितान्त असहाय समझता है। उसे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे संसार के क्षुद्र पदार्थ ही उसे क्लान्त बनाए हुए हों। जो अविद्याग्रस्त व्यक्ति इस प्रकार की निर्बल मनोवृत्ति के शिकार रहते हैं वे कदापि कुछ नहीं कर पाते। वे स्वयं अपने हाथों अपना भाग्यघट फोड़ते हैं। उनका कल्याण इसी में है कि भौतिक संसार से अपनी वृत्तियां हटा कर सर्वशक्ति सम्पन्न आत्मा पर केन्द्रीभूत करें।

—:o:—

विजयी कौन ? दुनिया किसकी ?

संसार में वे ही व्यक्ति विजय लाभ करते हैं जो 'निष्फलता' शब्द को अपने अन्तःकरण से बहिष्कृत कर देते हैं, उसका ध्यान, चिन्तन अथवा कल्पना तक नहीं करते, उस ओर से मुँह मोड़कर सदा-सर्वदा निजकार्य-सिद्धि, सफलता, विजय की परम परिपुष्ट साधना की ओर ही अपनी समस्त शक्ति उन्मुख रखते हैं। जिन व्यक्तियों में निश्चयबल जाग्रत हो जाता है, उनमें लक्ष्य-सिद्धि तथा विघ्न-बाधाओं को परास्त करने की दृढ़ता भी आ जाती है। वे एक बार जो कार्य करने का निश्चय कर लेते हैं उसमें अन्त तक दृढ़ता एवं धैर्यपूर्वक डटे रहते हैं। इस प्रकार चट्टान की तरह दृढ़निश्चय वाले व्यक्ति ही संसार में कुछ कार्य कर सकते हैं।

तुम अपने विषय में कैसे विचार रखते हो? अशक्य, संशय, असंभव जैसे पंगुकारी घृणित शब्दों को आज ही अपने कोष से निकाल दो। यदि संसार में कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करना चाहते हो तो कमहिम्मती को मन के देश से निकाल दो और साग्रह निश्चय की धारणा करो। धैर्य शौर्य, निश्चय एवं निर्भयता की दिव्य पूंजी द्वारा तुम विजयी हो सकते हो।

तुम्हारी इच्छा होती है कि हम विद्वान् बनें, मजबूत बनें, व्यापार में धन संग्रह करें, आध्यात्मिक जगत् में दिव्य बल संग्रह करें, पर इन सब इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो पाती। इसका क्या कारण है? कारण यही

है कि तुम्हारा निश्चय कमजोर है, तुम अपना इरादा इतना मज़बूत नहीं बनाते कि कार्यसिद्धि हो जाय। जहां एक-दो साधारण सी कठिनाइयां उपस्थित हुईं, कार्य कठिन प्रतीत हुआ कि तुम उससे पीछा छुड़ाने की सोचने लगते हो। तुम्हारा मन कहता है—'कौन इस टेढ़े काम को करे, इसमें तो बड़ी झंझट है; हम तो व्यर्थ इसमें पड़े, यों ही चलते-चलते एक व्यर्थ की बला मोल ले ली। छोड़ो इस झमेले को। कौन इन पचड़ों में पड़े।' इस प्रकार की ऊलजलूल बातें सोचकर तुम अपने कार्य में शिथिलता ले आते हो। तुम्हारा निश्चय ढीला हो जाता है, विचार-शक्ति अत्यन्त पंगु हो उठती है। तुम्हारा सामर्थ्य भी नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

'इसको कौन करे; भला, इससे क्या होना जाना है; कार्य तो कठिन प्रतीत होता है'—जब इस प्रकार के विचार तुम्हारे मस्तिष्क में उत्पन्न होते हैं तब वे तुम्हारे शरीर में दुर्बलता उत्पन्न कर देते हैं। शरीर की रही सही शक्ति भी चूस लेते हैं। मनुष्य को परवश बना डालते हैं। दुर्बलता के ऐसे थोथे विचार संसार के मनुष्यों को अग्रसर नहीं होने देते।

तनिक अपने जीवन की ओर देखो। तुम आज किस अवस्था में पड़े हो ? यह अवस्था तुम्हारी किसने बनायी है ? तुममें तथा एक उन्नत व्यक्ति में क्या अन्तर है ? यह फर्क क्यों है ? कौन तुम्हें अग्रसर होने से रोक रहा है ? इन सब प्रश्नों का यदि तुम सचाई से उत्तर दोगे तो यही प्रतीत होगा कि शक्तियाँ तो तुममें भी पड़ी हैं, किन्तु उन्हें विकसित होने का अवसर ही नहीं प्राप्त हुआ। होता कैसे ? तुमने इस तत्त्व पर कभी गहन चिन्तन ही नहीं किया।

प्रकृति का यह कठोर नियम है कि जो व्यक्ति नित्य-प्रति अपनी शक्तियों को अधिकाधिक विकसित करने में लगे रहते हैं, व्यर्थ समय नष्ट करने के बदले निरंतर अपनी योग्यता, बुद्धि, चातुर्य (Tact) की अभि-

वृद्धि में संलग्न रहते हैं, प्रत्येक दिन कुछ नवीन तत्त्व, कुछ लाभदायक नियम, कुछ प्रगतिशील प्रसङ्ग की खोज में अग्रसर होते हैं, उन्हें इच्छित फल की प्राप्ति अवश्य होती है। योग्य पुरुषों की संसार में सदैव मांग है। सुपात्र चाहे कुछ विलम्ब से ही सही, किन्तु ऊंचा उठे बिना कदापि नहीं रह सकता। आज न सही यदि तुमने सच्ची ठोस योग्यता प्राप्त कर ली है तो कल तुम अवश्य ऊंचे उठ जाओगे। अतः विजय प्राप्त करने के लिए तुम जिस स्थान पर भी हो, आज से ही अपनी योग्यता बढ़ाने का प्रयत्न करो। पहले अपने कार्य को पूर्णरूप से समझ लो; मन लगाकर परिश्रम से उसके विषय में जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त हो सके, कर डालो। तदुपरान्त अपने कार्य से जो ऊंचा कार्य है, उसे सीखना प्रारम्भ करो। क्रमशः उसमें पूर्णता के लिए प्रयत्न करो। लगे रहो, लगे रहने से तुम अपने इच्छित स्थान पर अवश्य पहुँच जाओगे। यदि तुम्हारी उच्चाभिलाषा की अग्नि प्रज्वलित रही तो तुम अवश्य सामान्य स्थिति से ऊपर उठ जाओगे।

एक पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक ने लिखा है—Never be self-satisfied. Aim higher and higher. Master your own job as soon as possible; and then master that of the man higher up. The post of responsibility at the top is only closed to the man who never wills to reach it. अर्थात् कभी अपने सुधार से संतुष्ट न हो अधिकाधिक उच्चाभिलाषी बनो। सर्वप्रथम शीघ्रातिशीघ्र अपने कार्य में दक्षता प्राप्त करो। फिर अपने से आगे वाले के कार्य में अनुभव प्राप्त करो। उत्तरदायित्व के स्थान उन्हीं के लिए निश्चित होते हैं, जो सदैव उनके लिए प्रयत्नशील रहते हैं।

दुनिया परिश्रमी की है। अधिकांश व्यक्ति बिना श्रम के ही विजय-सफलता इत्यादि के सपने देखा करते हैं। बिना प्रयत्न किए ये सपने

सपने ही रह जाते हैं। तुम अपने निश्चय बल को बढ़ाते रहो। 'भरे को सब भरते हैं'—यदि तुम किसी विशिष्ट प्रकार का बल सञ्चय कर लोगे तो उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती जायगी। विजय के लिए आरम्भ में थोड़े से बल का सञ्चय यथेष्ट है। यदि तुम यह प्रारम्भिक बल किसी प्रकार प्राप्त कर लो तो उसके साथ और बल स्वयं आकर्षित होकर चला आयेगा। मनुष्य के जीवन में एक ऐसा अवसर अवश्य आता है कि यदि उसके पास सञ्चित बल हो तो वह अनायास ही ऊंचा उठ जाता है। संसार में जिन-जिन व्यक्तियों ने ऋद्धि प्राप्त की है, उन में आवश्यकता से अधिक बल-सञ्चय था। उन्होंने अपने फुरसत के समय में अपनी बहुतसी सुप्त शक्तियों को जाग्रत कर लिया था; फिर वे क्रमशः उन्हें विकसित करते रहे। अनेक साधारण श्रेणी के व्यक्ति आवश्यकता से अधिक बल का सञ्चय करने के कारण ही उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचे हैं।

दूसरी श्रेणी के व्यक्ति वे हैं, जो विपत्ति का सामना करने की शक्ति के कारण केवल अदम्य उत्साह के बल पर विजय लाभ कर सके हैं। वे विपत्ति से दबे नहीं, निरन्तर संघर्ष करते रहे। प्रतिकूलता को उन्होंने अपने दृढ़ निश्चय बल से परास्त कर दिया और स्थिर निष्ठा से प्रगतिशील होते रहे। उस मनुष्य की सदैव पराजय होती है, जिसमें इतना ही बल होता है कि ज्यों-त्यों करके व्यवहार चला सके। उससे अधिक कष्टसाध्य, उत्तरदायित्व का, या ऊँची योग्यता का कार्य होना असम्भव नहीं तो दुःसाध्य तो अवश्य है; क्योंकि उसमें इतनी सामर्थ्य ही नहीं होती। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में अवसर तो अवश्यमेव आते हैं; ऐसे अवसरों पर योग्यता वाले व्यक्ति ऊँचे उठ ही जाते हैं। आँधी-तूफान में भी वे दृढ़ एवं मज़बूत खड़े रहते हैं। इसके विपरीत सामान्य योग्यता वाले जहां के तहाँ पड़े रह जाते हैं।

हमारे भीतर जितनी शक्ति प्रस्तुत है सदैव उससे न्यून ही व्यय

करना उचित है। यदि जितना संग्रह किया है उतना ही खर्च कर डाला तो विपत्ति एवं प्रतिकूलता से मुठभेड़ करने के लिये शक्ति कहाँ से आएगी? अतएव अपनी शक्ति का व्यय इस क्रम से करना चाहिए कि नित्य थोड़ा-बहुत अपने पास संगृहीत रहे।

विजय-प्राप्ति का सब से सुगम उपाय तो यह है कि तुम जिस क्षेत्र में पदार्पण करो, उस की चोटी पर चढ़ जाने का दृढ़ निश्चय बना लो। सामान्य स्थिति में सन्तोष न मान कर प्रशंसनीय स्थिति पर चढ़ने का उद्योग करते रहो। अपने अफसरों का अपने ऊपर विश्वास दृढ़ होने दो। तभी तुम उत्तरदायित्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर सकोगे। जिस कार्य में जितना उत्तरदायित्व है, उतनी ही अधिक आय, प्रशंसा या कदर है। जिस कार्य में जितनी कठिनाई है, उतना ही लाभ है। फिर कठिनाई से क्यों भयभीत होते हो? उसे प्रसन्नता से स्वीकार करो; फिर देखोगे कि दुनिया तुम्हारी ही है।

मनुष्य अपनी अन्तरात्मा में अपने उद्देश्यों की सिद्धि के लिये जितना अपने संकल्पों को मजबूत करता है, उतना ही उस में विजय लाभ कराने वाली शक्ति की जागृति होती है। पहले लक्ष्य ऊँचा करो, फिर परिश्रम द्वारा साधन प्राप्त करो, क्रमशः अपने सत्संकल्पों को पुष्ट करते रहो, वर्तमान स्थिति से कदापि संतोष न करो; बस, तुम विजय प्राप्त कर लोगे।

एक बार एक शिष्य ने अपने गुरु जी के पास जा कर विजय-प्राप्ति का उपाय पूछा। गुरु जी ने उत्तर दिया, 'शक्ति, संकल्प और साधना का फल विजय है; वही करो।' शिष्य ने उत्तर दिया 'महाराज! क्या बताऊँ, कोई मेरी सहायता ही नहीं करता; मैं किस प्रकार शक्ति सञ्चय कर सकता हूँ।' गुरु ने कहा, 'जब तक तुम अपने पाँवों पर खड़े होना नहीं सीख लेते, तब तक सफलता की बात भूल जाओ; क्योंकि विजय अपने बल से ही मिला करती है।'

जब तक आत्म-श्रद्धा एवं आत्म-निर्भरता जाग्रत् नहीं होती, तब तक मनुष्य सफलता की शक्तियों को ठीक स्थान पर कदापि केन्द्रित नहीं कर सकता। जब तक वह अपना स्वामी स्वयं नहीं बन जाता, उस का कल्याण कभी सम्भव नहीं। स्वतन्त्रता से कार्य करने पर ही उसकी आत्म-शक्तियाँ (अपूर्वता, संकल्प, सामर्थ्य, कुशलता) पूर्ण विकसित हो कर विजयश्री से भेंट करा सकती हैं। मन की व्यग्रता या उद्विग्नता की स्थिति ही आत्म-श्रद्धा की स्थिति नहीं है। पर्वत की तरह दृढ़ निश्चयबल वाले की पूर्ण परिपुष्ट निश्चयात्मक स्थिति ही आत्मश्रद्धा की यथार्थ समुचित मानसिक स्थिति है। इस प्रकार की निश्चयात्मिकता तथा दृढ़ता वाला व्यक्ति संसार के क्षुद्र थपेड़ों में व्यग्र होकर व्यर्थ अपनी मानसिक शान्ति को भंग नहीं करता, प्रत्युत निरन्तर अधिकाधिक मज़बूती से कदम बढ़ाता है।

निज अन्तः करण की क्रिया का सूक्ष्म अध्ययन करो। क्या तुम जन्म भर अन्य व्यक्तियों का आश्रय देखते रहोगे? क्या तुम सदैव दूसरों की इच्छानुकूल प्रवृत्ति में ही अपनी मौलिकता की इतिश्री कर दोगे? क्या तुम अन्य मनुष्यों द्वारा निर्मित मार्ग पर ही घिसटते रहोगे? क्या तुम ने अपने भाग्य की बागडोर किसी अन्य व्यक्ति के हाथ में पकड़ा दी है? यदि तुम ने ऐसा कर दिया है तो सचमुच तुम ने भयंकर भूल की है।

परतन्त्रता की दशा में मनुष्य की आध्यात्मिक शक्तियों का विकास नहीं होता। जब व्यक्ति स्वतन्त्रता के उत्कृष्ट महापथ का पथिक बन जाता है, तभी उसका उत्थान प्रारम्भ होता है। स्वतन्त्रता की अवस्था में उस में उन दिव्य प्रेरणाओं का उदय होता है, जो जीवन को नवीन रूप प्रदान करती हैं। पहले जहाँ वह अन्धकार में पड़ा था, अब जगत् उस की ओर आशा की दृष्टि से देखता है। प्रत्येक मनुष्य की उन्नति का एक पृथक् मार्ग होता है। स्वतन्त्रता की उन्मुक्त अवस्था में वह दूसरों का अनुकरण-मात्र नहीं करता, प्रत्युत अपना निर्दिष्ट मार्ग स्वयं खोज निकालता है।

आत्म-निर्माण का सरल मार्ग

मानव जीवन का सदुपयोग दो प्रकार से किया जा सकता है (१) आत्म-निर्माण द्वारा (२) राष्ट्र निर्माण द्वारा। इससे प्रथम साधन अर्थात आत्म-निर्माण पर विचार करें तो विदित होता है कि आत्म-निर्माण निम्न साधनों से संभव है :—

(१) शरीर रक्षा से

(२) भावनाओं पर विजय प्राप्त करने से

(३) बुद्धि विकास से

(४) आत्मज्ञान से

शरीर सम्पदा

आत्म निर्माण का प्रथम साधन मानव का शरीर है। शरीर वह यंत्र है, जिसकी सहायता से मानव संसार में कर्मपथ पर अग्रसर होता है, नाना कर्तव्यों का पालन करता है तथा संसार, समाज, देश और विश्व की प्रगति समझता है। संसार कैसा है? उसमें कितनी प्रगति हो रही है? किस दिशा में हो रही है? कितनी अच्छाई या बुराई है, यह मानव के शरीर पर अवलम्बित है। जिस प्रकार सावन के अंधे को सर्वत्र हरा ही हरा दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार रोगी शरीर वाले को सम्पूर्ण संसार रोग से आक्रान्त डूबता हुआ, नष्ट होकर काल कवलित होता हुआ प्रतीत होता है। अस्वास्थ्यकर स्थानों, निंद्य पेशा करते हुए व्यक्तियों को संसार में भोग-विलास, श्रृंगार, उत्तेजक पदार्थ,

इत्यादि के अतिरिक्त कुछ नहीं है। जिसने अपने शरीर को मद्य, तम्बाकू, चरस, पोस्त, इत्यादि उत्तेजक पदार्थों पर पाला है, वह व्यक्ति पशुत्व की श्रेणी में पड़ा पड़ा नारकीय कीट पतंगों का जीवन व्यतीत करता है। अस्वस्थ, रोगी, मनुष्य के विचार भी अस्वास्थ्यकर अनिष्ट ही होते हैं। यह संसार को अहंकार की संकीर्णता में बंधा हुआ देखता है। रोगी शरीर तो अपना क्या भला कर सकता है, तथा दूसरों का क्या कल्याण कर सकता है। उसके विचार बासी, योजनाएं रोगी, कल्पनाएं दूषित, वासनाएं प्रदीप्त और इच्छाएं अनिष्टकर ही रहेंगी।

आत्म-निर्माण के इच्छुको! नीरोग और स्वस्थ शरीर बनाओ, जिससे तुम स्वयं अनिष्टकर चिन्तन से बच सको, तथा अहितकर कल्पनाओं से बच कर अपना जीवन दिव्य प्रबन्ध से सुव्यवस्थित कर सको। तुम्हें वही ग्रहण करना चाहिए जो शुभ हो। स्वास्थ्य, पवित्र भोजन, सात्त्विक वस्तुओं के भोजन पर निर्भर है। तुम जो भोजन करते हो, उसी के अनुसार तुम्हारी भावनाओं का निर्माण होता है। सात्त्विक वस्तुओं—गेहूँ, चावल, फल, तरकारियां, दूध, मेवे इत्यादि पर बना हुआ स्वस्थ मनुष्य आत्म-निर्माण सरलता से कर सकता है। उसकी भावनाएं तामसी वस्तुओं की ओर आकृष्ट न होंगी। वह दूसरों के प्रति कभी घृणा-द्वेष, ईर्ष्या, क्रोध की भावनाएं नहीं ले जाएगा। इसके विपरीत मांस, मादक द्रव्य, तामसी उत्तेजक पदार्थों, मद्य इत्यादि के बल पर स्वस्थ शरीर अन्दर से खोखला रहेगा। वह उस रेत की दीवार की भांति है, जो जरा से धक्के से धराशायी हो सकता है। नींद परिश्रम, श्वास-प्रश्वास के व्यायाम, दूध, छाछ, फलों के रस ये सभी तत्त्व शरीर की रक्षा के लिए अमूल्य हैं। उपवास द्वारा रोग से मुक्ति तथा अंतरङ्ग शुद्धि करते रहना अनिवार्य है।

आत्मनिर्माण की दूसरी साधना है भावनाओं पर विजय। गन्दी

की जाएं, तथा दैवी सम्पदाओं का विकास किया जाय आत्मविकास हो सकता है। कुत्सित भावनाओं में क्रोध और अभिमान, निर्दयता, निराशा अनिष्ट भाव प्रमुख इनका मूलोच्छेदन कर देना चाहिए। इनसे मुक्ति पाने उपाय है कि इनके विपरीत गुणों—धैर्य, उत्साह, प्रेम, शीलता, उपकार, नम्रता, न्याय, सत्यवचन आदि दिव्य किया जाय। ज्यों ज्यों यह दैवी गुण विकसित होंगे, दुर्गुण जायेंगे। दुर्गुणों से मुक्ति पाने का यही एक मार्ग है। द्वार खोल दीजिए, प्राणिमात्र को अपना समझिये, समस्त पत्तियों को अपना ही समझा कीजिए। संसार से प्रेम आपके शत्रु स्वयं दब जायेंगे, मित्रता की अभिवृद्धि होगी। इसी प्रकार धैर्य, उदारता, उपकार इत्यादि गुणों का विकास प्रारम्भ कीजिए। इन गुणों की ज्योति में आपके शरीर में कोई कुत्सित भावना शेष न रह जायगी।

अनिष्ट भाव से स्वयं दूसरे की ही हानि नहीं होती किन्तु तुम्हारी स्वयं की भी हानि होती है। उसकी हानिकारक तरंगें विश्व में व्याप्त होकर वातावरण को दूषित करती हैं। महायुद्ध होते हैं जिसमें असंख्य व्यक्तियों का संहार होता है।

आत्मनिर्माण का तृतीय साधन है—बुद्धि-विकास। इससे सत्कर्म तथा दुष्कर्म का विवेक जागृत होता है। शुभ क्या है? अशुभ किसे कहते हैं? किस में अधिक से अधिक व्यक्तियों का भला है? इत्यादि का ज्ञान मनुष्य को बुद्धि के विकास द्वारा ही प्राप्त होता है। बुद्धि-विकास के चार मुख्य साधन हैं—सत्संग, अध्ययन, विचार और भूल।

सत्संग से कुटुम्ब और समाज का कल्याण होता है। जिन अध्यात्मवादियों, ऋषि-महात्माओं, विद्वानों या विचारकों ने संसार में

वासनाएं दग्ध की जाएं, तथा दैवी सम्पदाओं का विकास किया जाय तो उत्तरोत्तर आत्मविकास हो सकता है। कुत्सित भावनाओं में क्रोध घृणा, द्वेष, लोभ और अभिमान, निर्दयता, निराशा अनिष्ट भाव प्रमुख हैं। धीरे धीरे इनका मूलोच्छेदन कर देना चाहिए। इनसे मुक्ति पाने का एक यह भी उपाय है कि इनके विपरीत गुणों—धैर्य, उत्साह, प्रेम, उदारता, दानशीलता, उपकार, नम्रता, न्याय, सत्यवचन आदि दिव्य भावों का विकास किया जाय। ज्यों ज्यों यह दैवी गुण विकसित होंगे, दुर्गुण स्वयं दग्ध होते जायेंगे। दुर्गुणों से मुक्ति पाने का यही एक मार्ग है। आप प्रेम का द्वार खोल दीजिए, प्राणिमात्र को अपना समझिये, समस्त कीट पतंग-पशु पक्षियों को अपना ही समझा कीजिए। संसार से प्रेम कीजिए। आपके शत्रु स्वयं दब जायेंगे, मित्रता की अभिवृद्धि होगी। इसी प्रकार धैर्य, उदारता, उपकार इत्यादि गुणों का विकास प्रारम्भ कीजिए। इन गुणों की ज्योति में आपके शरीर में कोई कुत्सित भावना शेष न रह जायगी।

अनिष्ट भाव से स्वयं दूसरे की ही हानि नहीं होती किन्तु तुम्हारी स्वयं की भी हानि होती है। उसकी हानिकारक तरंगें विश्व में व्याप्त होकर वातावरण को दूषित करती हैं। महायुद्ध होते हैं जिसमें असंख्य व्यक्तियों का संहार होता है।

आत्मनिर्माण का तृतीय साधन है—बुद्धि-विकास। इससे सत्कर्म तथा दुष्कर्म का विवेक जागृत होता है। शुभ क्या है? अशुभ किसे कहते हैं? किस में अधिक से अधिक व्यक्तियों का भला है? इत्यादि का ज्ञान मनुष्य को बुद्धि के विकास द्वारा ही प्राप्त होता है। बुद्धि-विकास के चार मुख्य साधन हैं—सत्संग, अध्ययन, विचार और भूल।

सत्संग से कुटुम्ब और समाज का कल्याण होता है। जिन अध्यात्मवादियों, ऋषि-महात्माओं, विद्वानों या विचारकों ने संसार में

आध्यात्मिक उन्नति की है, उनके सम्पर्क में आने से मनुष्य को संसार की विषमताओं से बचने के अनेक साधन प्राप्त होते हैं, अपनी समस्याओं का हल निकलता है, आगे आने वाली कठिनाइयों से मुक्ति के साधन एकत्र करने में सहायता प्राप्त होती है।

अध्ययन से मनुष्य महापुरुषों का सत्संग प्राप्त करता है। पुस्तक का अर्थ है किसी विद्वान् का सर्वदा सोते जागते पुस्तक के पृष्ठों के रूप में आपके समक्ष रहना। पुस्तकों से ऐसे महापुरुषों से सम्पर्क स्थापित हो सकता है, जो इस संसार में नहीं हैं, किन्तु मानवजगत् में अपनी छाप छोड़ गए हैं। नैतिक, मानसिक, अध्यात्मिक विकास के हेतु उत्तमोत्तम धार्मिक ग्रंथों का नियमित स्वाध्याय अतीव आवश्यक है। घर में उत्तम ग्रंथों का संकलन रखने से घर का वातावरण शुद्ध होता है। शुभ विचार की लहरें सर्वत्र व्याप्त हो जाती हैं।

सद्विचार से रमण करने में बुद्धि विकास का क्रम उचित दिशा में होता है। सद्विचार मन में शिवभावना, सत्यभावना, और दिव्य-भावना जाग्रत रखता है। स्मरण रखिये, "जहां आप हैं वहां परमात्मा है, जहां परमात्मा है, वहां आप हैं।" आपका जीवन और व्यवहार दिव्य प्रबन्ध से सुव्यवस्थित है। परमात्मा आपसे प्रेम करता है और सदैव आपका सहायक है। आप कभी दुःखी, भ्रान्त या निराश नहीं हो सकते, क्योंकि आपका संचालक परमात्मा है। संसार के सभी प्राणी आपके आत्मबंधु हैं, आपका शरीर परमात्मा का निवास स्थान है। इस प्रकार की दिव्यभावना में अपना जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति सफलता से आत्मनिर्माण कर सकता है।

भूल से बुद्धि-विकास होता है, एक भूल का अर्थ है आगे के लिए अकलमन्दी। संसार के अनेक पशु भूल से विवेक सीखते हैं, लेकिन मनुष्य उनसे बहुत जल्दी सीखता है। भूल का अर्थ है कि भविष्य में आप

अपनी गलती नहीं दोहरायेंगे। भूल से अनुभव बढ़ता है। संसार में व्यक्ति के अनुभव का ही महत्त्व है। अनुभव अनेक भूलों द्वारा अर्जित सद्ज्ञान है। भूल यदि दोहराई न जाय, तो बुद्धि-विकास में बहुत सहायता करती है। महापुरुषों के जीवन में अनेक ऐसे क्षण आए हैं जब वे भूलों के बल पर महान बने हैं।

आत्मनिर्माण का अन्तिम साधन है आत्म-भाव का विस्तार। साधक की दृष्टि से विकास का सब से उच्च स्तर यही है। इस स्तर पर पहुँचने से साधक सर्वत्र आत्मभाव का दर्शन करता है। प्रत्येक व्यक्ति, वस्तु तथा जगत् को वह ब्रह्मरूप देखता है। अपने शरीर को वह परमात्मा का गृह समझता है। वह जिस वस्तु को देखता है वे सब उसकी आत्मा के अंग प्रत्यंग हैं। उसकी आत्मा की परिधि सुविस्तृत होती है, जिसमें शत्रु मित्र सभी सम्मिलित रहते हैं। वह जो देखता है, स्पर्श करता है, भाषण करता है, उस में आत्मा का अस्तित्व है। जो भोजन करता है, श्वास लेता है सब ब्रह्मरूप चेतन अमृत है।

ऐसा साधक अपने आपको शरीर नहीं, आत्मा समझता है। वह देश, जाति, वर्ण की संकुचित भूमि से उठ कर सब मनुष्यों में एक रस बहने वाली आत्मा को ही देखता है। संसार की वासनाओं की तरंगें उसे दुःखी नहीं करतीं, क्योंकि वह तो स्थिर वस्तु आत्मा में ही विश्वास करता है। वह देहपूजा में रत नहीं रहता, वरन् आत्मा की आराधना करता है।

उसकी आत्मिक दृढ़ता से टकरा कर सुख-दुःख, जय-पराजय, हानि-लाभ, मान-अपमान, प्रिय-अप्रिय प्रसंग टूक टूक हो जाते हैं। उसे आत्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं दीख पड़ता। एक दिव्य आयोजन का दर्शन वह सर्वत्र करता है। उसके लिए कोई स्थान आत्मा से खाली नहीं है।

सच्चा ज्ञान मनुष्य को अपनी आत्मा से ही मिलता है। इस स्तर पर मनुष्य इतना ऊंचा उठता है कि उसे साँसारिक मोह, माया, त्रुटियां, आलोचनाएं नहीं सतातीं। उसका मन पवित्र और निर्भय हो जाता है। इस आत्मदृष्टि के पाने से रोग, दुःख, शोक आदि पास नहीं फटक सकते। आत्मा के ज्ञान से क्या नहीं जाना जा सकता? सच्ची शान्ति, सच्चा सुख, सच्ची ज्योति आत्मा में ही प्राप्त है।

आत्मदृष्टि वाला व्यक्ति संसार के प्राणिमात्र को अपना आत्मबन्धु मानता है। "मैं" के स्थान पर "हम सब" की भावनाएं रखता है। युधिष्ठिर की भांति वह कुत्ते जैसी घृणित चीज को भी अपने साथ रखना चाहता है। सभी की उन्नति हो, सभी आगे बढ़ें, जितना मिले सभी बांट कर खायें खुश रहें सामूहिक रूप से मिलकर संसार का आनन्द लें—ऐसे विचारों में मस्त रहने के कारण उसके आत्मभाव की परिधि खूब बढ़ती है और उसमें जन समाज के अतिरिक्त पशु पक्षी कीट पतंग जलचर थलचर तथा अन्य छोटे जीवों को भी बराबर का स्थान प्राप्त होता है।

संकीर्णता आत्मा में नहीं है। आत्मा का विस्तार अनन्त है। विश्वात्मा में सभी कुछ सम्मिलित है। परमात्मा नहीं चाहता कि उसके पुत्रों में खुदगर्जी की विषैली अग्नि प्रज्ज्वलित हो। वह अकेला खाने की दुष्प्रकृति को मानव-समाज से दूर करना चाहता है। उसके राज्य में सबके पास बराबर का हिस्सा है। प्रेम, सौजन्य, सहानुभूति, सहायता—यही आत्मभाव के नाना उपकरण हैं। शास्त्रों में अनेक स्थानों पर कहा गया है, "जो अकेला खाता है वह पाप खाता है, जो अपने लिए सोचता है वह नरक की बात सोचता है।"

आत्मभाव की परिधि विस्तृत कीजिए, सामूहिक उन्नति की बात सोचिये। सबको आत्मा मानकर सबकी उन्नति, सबके कल्याण की बात सोचें और इसी योजना को कार्यान्वित करें, तो राष्ट्रनिर्माण हो

सकता है। व्यक्तिगत उन्नति से अधिक लाभ नहीं है सब की उन्नति अपनी उन्नति में सोचने से आत्मा का विस्तार होता है।

"मैं आरोग्यता, प्रेम, और भ्रातृभाव के विचारों की लहरें समस्त विश्व के प्राणिमात्र को भेजता हूं। संसार में मेरा कोई भी द्वेषी नहीं है। मैं सब मनुष्यों में परमात्मा का दर्शन करता हूं। सब लोग सुखी हों, अभय हों, रोग रहित हों, सबका कल्याण हो। मैं प्राणिमात्र को क्षमा करता हूं, वे मुझे क्षमा करें।"—ऐसी भावनायें प्रत्येक अध्यात्म-वादी को मन में रखनी चाहिएँ।

—:०:—

ये अच्छी आदतें डालिए

सुप्रवृत्तियों के विकास से अच्छी आदतों का निर्माण होता है, मनुष्य अपने उत्तम गुणों का विकास करता है और चरित्र में, अंधकार में प्रविष्ट दुर्गुणों का उन्मूलन होता है। अतः हमें प्रारंभ से ही यह जान लेना चाहिए कि हम किन किन गुणों तथा आदतों का विकास करें।

नैतिकता :—

उत्तम चरित्र का प्रारंभ नैतिकता से होता है नैतिकता अर्थात् श्रेष्ठतम आध्यात्मिक जीवन हमारा लक्ष्य होना चाहिए। नैतिकता हमें सद्-असद्, उचित-अनुचित, सत्य-असत्य में अन्तर करना सिखाती है। नैतिकता सद्गुणी जीवन का मूलाधार है। यह हमें असद् आचरण, गलतियों अनीति और दुर्गुणों से बचाती है। नैतिकता का आदि स्रोत परमेश्वर है। अतः, यह हमें ईश्वरीय जीवन व्यतीत करने की शिक्षा प्रदान करती है। यह वह जीवनशास्त्र है जो हमारे जीवन के कार्यों की आलोचना कर हमें उच्च आध्यात्मिक जीवन की ओर प्रेरित करती है।

नैतिकता धर्म का व्यावहारिक स्वरूप है। हम प्रायः उत्तम ग्रन्थ पढ़ते हैं, अनेक जीवन सूत्र जानते हैं किन्तु उत्तम आचरण जीवन में नहीं करते हैं। नैतिकता उस ज्ञान के व्यवहार और प्रयोग का नाम है। यह हमें जीवन को सही रूप में जीना सिखाती है। हमें दया करना

चाहिये ? हमारा क्या कर्त्तव्य है ? सही मार्ग कौनसा है ? किस कार्य से हमें सर्वाधिक आत्म-संतोष प्राप्त हो सकता है ?—यह नैतिकता के मूल प्रश्न हैं। आपको वही करना चाहिए, जो उचित है, सबसे अधिक फल देने वाला है, जिसमें कोई गलती नहीं है। यह सब ज्ञान हमें नैतिकता से जीवन व्यतीत करने पर प्राप्त होते हैं।

नैतिकता के बिना धर्म का कोई अर्थ नहीं है। यह अव्यवहारिक और कल्पना-शील बनता है। बिना नैतिकता के धर्म एक ऐसे वृक्ष के समान है जिसमें जड़ नहीं है। बिना नैतिकता के व्यवहारिक जीवन ऊंचा नहीं उठ सकता, न ईश्वरीय तथ्यों का जीवन में प्रकाश हो सकता है।

संयमः—

नैतिक जीवन की आधार-शिला संयम पर निर्भर है। संयम का तात्पर्य है अपने ऊपर अनुशासन रखना, विवेक के अनुसार शरीर को चलाना इत्यादि। संयमी व्यक्ति अपने मन, वचन, तथा शरीर पर पूर्ण अधिकार रखता है। वह उसे उचित ढंग से चलाता है और मिथ्या प्रलोभनों के वश में नहीं आता। जैसे ही कोई प्रलोभन मनमोहक रूप धारण कर उसके सम्मुख आता है, वैसे ही आत्म-अनुशासन उस की रक्षा को आ उपस्थित होता है।

संयम हमारे असंयमी उन्मुक्त जीवन को अनुशासन में लाता है। संयम हमें उचित और विवेक-पूर्ण मर्य्यादा में रहना सिखाता है। जो वस्तुएं आदतें अथवा कार्य हानिकर हैं, उनसे हमारी रक्षा करता है।

मनुष्य तथा पशु, उच्च तथा निम्न कोटि के जीवन में क्या अन्तर है ? मनुष्य गन्दगी, त्रुटि, ज्यादती, खराबी, दुर्भाव से अपने आप को रोक सकता है, पशु में यह नियंत्रण नहीं होता। वह वासना के प्रवाह में अन्धा हो जाता है। उसे हिताहित, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, विवेक-अविवेक का ज्ञान नहीं होता। मनुष्य संयम द्वारा अपनी इन्द्रिय मन तथा शरीर

पर अनुशासन कर सकता है ।

विवेक के विकास से संयम आता है । जैसे २ मनुष्य का विवेक बढ़ता है उसे यह ज्ञान होता है कि किस बात के अनियंत्रण से क्या क्या हानियाँ संभव हैं । वह इन से अपनी रक्षा करने का प्रयत्न करता है । फलतः, उसका आत्म-विकास होता है ।

संयम का प्रयोग पांचों इन्द्रियों के निग्रह में करना चाहिए । हमारी इन्द्रियों के अमर्य्यादित और अनियंत्रित हो जाने से अनेक रोग, पाप और दुर्भावों की सृष्टि होती है । अतः, सर्वप्रथम इन्द्रिय-निग्रह से ही संयम का प्रयोग करना चाहिए ।

जीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं जिस में संयम का उपयोग न हो । संयमी व्यक्ति अपनी वासनाओं के परिष्कार द्वारा दीर्घ जीवन प्राप्त करता है और शरीर को रोग-मुक्त रखता है ।

संयम अनुशासन का पिता है और हमें वैराग्य भावना प्रदान करता है, योग मार्ग पर एकाग्रता पूर्वक चलने की शिक्षा प्रदान करता है । यह हमारी शक्ति को संग्रह, बुद्धि को स्थिर और मन को अनुशासन से परिपूर्ण करता है ।

परिस्थितियों के अनुकूल ढल जानाः—

अपने आप को नई नई विषम तथा विरोधी परिस्थितियों के अनुसार ढाल लेना, इच्छाओं, आवश्यकताओं और रहन-सहन को नवीन परिस्थितियों के अनुसार घटा बढ़ा लेना एक बड़ा गुण है । मनुष्य को चाहिए कि वह दूसरे व्यक्तियों, चाहे वे कैसे ही गुण स्वभाव के क्यों न हों, के अनुसार अपने को ढालना सीखे । नई परिस्थितियाँ चाहे जिस रूप में आयें, उसके वश में आ जायें । अच्छी और बुरी आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार अपने को घटा बढ़ा लिया करें ।

अधिकांश व्यक्ति दूसरे के अनुसार अपने को ढाल नहीं पाते,

इसलिए वे दूसरों का हृदय जीत नहीं पाते, न झुक सकने के कारण वे सफल नहीं हो पाते। पत्नी पति के अनुसार, पति पत्नी के अनुसार, विक्रेता ग्राहक के अनुसार, मातहत अफसर के अनुसार, विद्यार्थी गुरु के अनुसार, पुत्र पिता के अनुसार न ढल सकने के कारण दुःखी रहते हैं।

आप बेंत की तरह लचकदार बनें जिस से अपने को हर प्रकार के समाज के अनुसार ढाल लिया करें। इस के लिए आप दूसरे की रुचि, स्वभाव, आदतों और मानसिक स्तर का ध्यान रखें। शक्कर से मीठे वचन बोलें, प्रेम प्रदर्शित करें, दूसरों की आज्ञाओं का पालन करें। आप से बड़े व्यक्ति यह चाहते हैं कि आप उन की आज्ञा का पालन करें। सभ्यता पूर्वक दूसरे से व्यवहार करें। ढलने की प्रवृत्ति से मित्रताएं स्थिर बनती हैं, व्यापार चलते हैं, बड़े बड़े काम निकलते हैं। इस गुण से इच्छा शक्ति बढ़ती है और मनुष्य अपने ऊपर अनुशासन करना सीखता है। इस से आत्म-बलिदान की भावना का विकास होता है, स्वार्थ नष्ट होता है।

विरोध तथा प्रतिकूलता में धैर्यः—

विपत्ति, दुख या वेदनामय जीवन एक बड़ा शिक्षक है। यह वह स्थिति है जिस में चारों ओर से कष्ट आते हैं, आर्थिक स्थिति बिगड़ जाती है, मन दुखी रहता है और कहीं से कोई सहारा नहीं दीखता। विपति ऐसी घटनाओं का क्रम है, जो सफलता का शत्रु है और आनन्द को नष्ट करने वाला है। यह दुःख की मनः स्थिति है।

विपति दूसरे रूप में एक वरदान सिद्ध होती है। जो व्यक्ति धैर्य बनाये रखता है, वह अन्ततः विजयी होता है। विपत्ति से हमारी इच्छा शक्ति में वृद्धि होती है और सहिष्णुता प्राप्त होती है। इस से हमारा मन ईश्वर की ओर प्रवृत्त होता है। अन्ततः, इससे वैराग्य की प्राप्ति
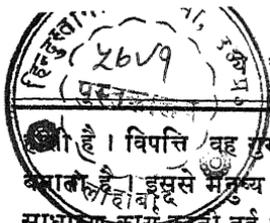
[illegible]ती है। विपत्ति वह गुरु है जो मनुष्य को उद्योगी और परिश्रमशील बनाता है। इससे मनुष्य की सोई हुई शक्तियाँ जाग्रत हो जाती हैं, साधारण कार्य करती हुई शक्ति तीव्र हो जाती है और जागरूकता प्राप्त होती है। समृद्धि के प्रकाश में आनन्द मनाना साधारण सी बात है, किन्तु प्रतिकूलता और विपत्ति में स्थिर बुद्धि रखना विशेष बात है।

आप विपत्ति में चिंतित न रहें, धैर्य धारण करें, प्रसन्न मुद्रा बनाएँ, हँसते रहें और आत्मा से शक्ति ले कर अपनी समस्याओं को नवीन रूप में विचार करें। आप की आत्मा में विपत्ति से जूझने की अनन्त शक्ति है। इसे अनुभव करें।

सोच कर देखिए, प्रशान्त सागर में रह कर क्या कोई सफल नाविक बन सकता है? सागर की उत्ताल लहरों से जूझ कर आंधी तूफान को झेल कर ही बड़े कप्तान बनते हैं विपत्ति के समुद्र में ही आप जीवन के कप्तान बनते हैं। आप के धैर्य, साहस, लगन, शक्ति और अध्यवसाय की परीक्षा विपत्तियों के भयंकर तूफानों में ही होती है। विपत्ति में चारों ओर से घिर कर हम नई २ बातें खोजते हैं, नई खोजें करते हैं, खूब सोचते विचारते और अपने व्यक्तित्व का विकास करते हैं। विपत्ति हमारे मित्रों को परखने की सच्ची कसौटी है। विपत्ति एक ऐसा सांचा है, जो हमें नए सिरे से ढालता है और विषम परिस्थितियों से युद्ध करना सिखाता है।

विपत्ति संसार के बड़े २ महात्माओं, राजनीतिज्ञों, विद्वानों पर आई है। वे उस में तपे, पिसे, कुटे और मजबूत बने हैं। फिर आप क्यों निराश होते हैं? काले बादलों की तरह वह हवा में उड़ जाने वाली क्षणिक वस्तु है। यह तो आप की इच्छाशक्ति और दृढ़ता की परीक्षा लेने के लिए आती है।

जागरूकता:—

जो जीवन में जागरूक रहता है, उन्नत होता रहता है। जो तन्द्रा

आलस्य या विलास में सोया रहता है, क्षय और पतन को प्राप्त होता है। जागरूक व्यक्ति अपने चारों ओर, संसार में देश तथा समाज में होने वाले क्रम तथा घटनाओं पर तीखी दृष्टि रखता है और उन से लाभ उठाता है।

जागरूकता वह स्थिति है जिस में व्यक्ति मानसिक तथा शारीरिक दृष्टि से चौकन्ना रहता है। उस का मन संसार की प्रगति को देखता रहता है। उस में शैथिल्य और आलस्य नहीं रहता। सतर्क पहरेदार की भांति वह अपने इर्द गिर्द के परिवर्तनों को देखता और उनसे लाभ उठाता है। डाक्टर को देखिए, सिपाही या मल्लाह को देखिए, वे कैसे चुस्त, सतर्क, जागरूक रहते हैं। अपने काम पर तीखी दृष्टि लगाये रहते हैं। आध्यात्मिक जगत् के पथिक के लिए जागरूकता अतीव आवश्यक गुण है।

जीवन में अपने कर्तव्यों, उत्तरदायित्वों, आगे आने वाली जिम्मेदारियों और व्ययों के प्रति जागरूक रहिये। आप की प्रगति कैसी हो रही है, आर्थिक, सामाजिक, बौद्धिक, शारीरिक सभी रूपों में आप कितना आगे बढ़ रहे हैं, अथवा नीचे सरके आ रहे हैं?—यह चौकन्ने हो कर नापते रहिये। चौकन्ना व्यक्ति आने वाले खतरों से मार नहीं खाता। जरा सा खतरा देखते ही वह गिलहरी की तरह जागरूक हो उठता है और बच निकलता है।

वे ही व्यक्ति अधिक वेतन प्राप्त करते हैं, जिनमें जागरूकता की अधिक आवश्यकता होती है। इंजिन तथा हवाईजहाज के चालक, बम चलाने वाले, मोटर ड्राईवर, डाक्टर, इन्जिनियर, मैजिस्ट्रेट इत्यादि सब ही को जिस गुण की अतीव आवश्यकता है, वह सतत चेतनशीलता है।

शरीर में रोगों की ओर से सतर्क रहिए। तनिक सी लापरवाही से इन रोगों का अत्यधिक विकास हो सकता है। तनिक सी अशिष्टता

से लड़ाई झगड़ा, मुकदमेबाजी तक की नौबत आ सकती है। चारों ओर से आक्रमण आ सकते हैं, पर जागरूकता सबसे हमारी रक्षा कर सकती है। अच्छा सेनापति सब जरूरतों के लिए तैयार रहता है।

मृदुलता :—

स्वभाव की मृदुलता ग्रहण करें। मृदुल स्वभाव उस व्यक्ति का है जिसे देख कर स्वतः मन में उसके प्रति आकर्षण का भाव उत्पन्न होता है। उसके मुख, स्वभाव तथा चरित्र से मानसिक आकर्षण, प्रेम, तथा आनन्द प्रस्फुटित होता है। मृदुलता के अन्तर्गत वे सभी विधियां आती हैं जिनके द्वारा मनुष्य दूसरों को प्रसन्न रखता तथा उनके हृदय में अपने प्रति प्रेम उत्पन्न करता है। उसका सबके प्रति प्रेममय, मित्रतापूर्ण व्यवहार होता है। उसका व्यवहार मित्रों और हितैषियों को उसकी ओर आकर्षित करता है। उसमें चिड़चिड़ापन, उत्तेजना, क्रोध, कटुता, कुढ़न इत्यादि नहीं होतीं।

मृदु व्यक्ति बड़ा मीठा हंसमुख स्वभाव रखता है, सभ्यतापूर्ण ढंग से व्यवहार करता है और प्रेम सहानुभूति से स्निग्ध रहता है। जो व्यक्ति उसके सम्पर्क में आता है, उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता।

मृदु व्यक्ति सदा दूसरों को प्रसन्न रखने और प्रेम करने की बात सोचता रहता है। उसके मित्रों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है। वह उदार, दयावान् और प्रेममय रहता है। इन सद्गुणों के कारण मृदु व्यक्ति सब स्थितियों और सब प्रकार के व्यक्तियों से बड़ा अच्छा निभाव कर लेता है।

यथाशक्ति दूसरों से प्रेम कीजिए। सहानुभूति पूर्ण ढंग से अप्रिय कामों को कीजिए। जिससे भी मिलें आपके वाक्य, शब्द और अक्षर प्रेम से सरस स्निग्ध रहें। जगत् के विदग्ध हृदयों को आपके शब्दों से ऐसा मरहम प्राप्त हो कि वे अपने संताप भूल सकें और दो घड़ी अपने महत्त्व का अनुभव कर सकें।

शक्तिसंचय का मार्ग ग्रहण करें

आपके सामने ढेर का ढेर भोजन हो और मान लीजिए, आप खूब खा भी लें, पर अधिक भोजन ग्रहण करने से लाभ की अपेक्षा हानि की ही अधिक संभावना है। हम जो कुछ खाते हैं, उससे नहीं, परन्तु जो अन्न हम पचा कर रक्त के रूप में परिवर्तित कर अपने शरीर का एक अंग बना लेते हैं, उससे हमें शक्ति प्राप्त होती है। शक्ति संग्रह में है। अधिक व्यय तथा कम संचय से बृहत् कोष रिक्त हो जाते हैं। अतः, जो व्यक्ति व्यय ही व्यय करता है, शक्ति-संचय का कार्य नहीं करता वह मूर्ख ही कहा जायगा।

हमारे देखने में अनेक व्यक्ति ऐसे आए हैं, जिन्हें खाने-पीने की कोई कमी नहीं है। घर अन्न, घी, दूध से भरपूर है, किसी प्रकार से जीविका की चिन्ता नहीं है, परमेश्वर का दिया सब कुछ है, किन्तु फिर भी खेद है, ये अमीर लोग सूखे अस्थि पिंजरवत् प्रतीत होते हैं। कारण, ये शक्ति का व्यय अर्जन की मात्रा से अधिक कर देते हैं। जब शक्ति के कोष से आप निरन्तर व्यय करते चलेंगे, तो आखिर वह कब तक चल सकता है ?

शक्तिसंचय का यही नियम हम आर्थिक क्षेत्रों में भी कार्य करता हुआ पाते हैं। कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो खूब कमाते हैं, रुपया उनके हाथों में हजारों की संख्या में आता जाता है, कुछ सट्टे में रोज हजारों का वारा न्यारा करते रहते हैं। अभिनेता, वेश्याएँ दिन भर में

सब से अधिक कमाते हैं। डाक्टर फीस के रुपयों से जेबें भरे रहते हैं। परन्तु फिर भी उनमें से ६० प्रतिशत अन्दर से खोखले रहते हैं। समय आ पड़े तो दूसरे के सामने हाथ फैला देते हैं। उनके पास संकट काल के लिए भी पैसा संचित नहीं होता। वास्तव में, हम जो कुछ कमाते हैं उससे नहीं, परन्तु जो बचा सकते हैं उससे हम धनवान् बनते हैं। कम आय वाले अपनी आवश्यकताओं को कम कर थोड़ा थोड़ा बचाते हैं, अपने प्रलोभनों पर नियन्त्रण रखते हैं। फलतः, थोड़े संचय से ही अमीर बन जाते हैं। आर्थिक क्षेत्र में भी वही नियम कार्य करता है, जिसे हमने स्वास्थ्य क्षेत्र में देखा है अर्थात् संचय से समृद्धि, अपव्यय से हानि, गरीबी और अप्रतिष्ठा। अनेक अपव्ययी पर्याप्त कमाई के बावजूद दीन हीन गरीब बने हुए हैं। कारण, वे क्षणिक सुख में अपना सब कुछ व्यय कर देते हैं। उनकी सम्पूर्ण आय मिथ्या प्रदर्शन, बाह्य टीपटाप में ही व्यय हो जाती है।

अधिक कमाने से आप कदापि धनवान् नहीं बनेंगे। कमाने के साथ अपनी पूंजी को संचित रखना, निरन्तर उसके कोष को बढ़ाते रहना, अभिवृद्धि करना कदापि न भूलिए। हम जो कुछ कमाते हैं, उससे नहीं, परन्तु जो कुछ बचा कर रख सकते हैं, उससे धनवान् समृद्धिशाली बनते हैं।

ज्ञान के क्षेत्र में भी यही नियम कार्य कर रहा है। लोग बहुत सी पुस्तकें खरीदते हैं; अखबारों एवं मासिक पत्रों का ढेर लगा देते हैं लेकिन उन्हें ध्यान से नहीं पढ़ते। पढ़े हुए ज्ञान को स्मृति में दृढ़ता-पूर्वक स्थिर नहीं करते। उन्हें मानसिक अजीर्ण है। मन में ठहरता कुछ नहीं। उस ज्ञान से क्या लाभ जो एक कान से सुनकर दूसरे से निकाल दिया जाये। वैसे पुस्तकें तो पुस्तक विक्रेता और लाइब्रेरी के लाइब्रेरियन भी रखते हैं। क्या पुस्तक चुम्बन मात्र से कोई व्यक्ति ज्ञानवान् बन सकता है? कदापि नहीं। स्मरण रखिए, हम जो कुछ

पढ़ते हैं, उससे नहीं परन्तु जो पढ़ कर स्मरण रख सकते हैं और आवश्यकता के समय तुरन्त उसका उल्लेख भी कर सकते हैं, अर्थात् जो ज्ञान हमारी स्मृति में उतर आया है और हमारे मानसिक संस्थान का एक अङ्ग बन गया है, उस संचित ज्ञानकोष से हम विद्वान् बनते हैं। अधिक पढ़ने और याद न रखने को तो एक प्रकार की मानसिक व्याधि मात्र कहा जाएगा। अध्ययन के पश्चात् हम जो कुछ स्मरण रख सकते हैं, उससे हम विद्वान् बनते हैं। जो विद्या आपके कण्ठ में है, और जो रुपया आपके गंठ में (अर्थात् गाँठ में Ready money) है, वह आपकी चीज है, अन्य सब व्यर्थ है। बैंकों में जमा किए हुएँ, दूसरों को उधार दिए हुए या जमीन जायदाद में लगाए हुए धन का क्या सहारा? सम्भव है, वह आपके हाथ में ही न आए। बैंक फेल हो जाय, कर्जदार भाग जाँय, मकान जायदाद न बिकें; फिर आप क्या करेंगे? किसके आगे हाथ फैलायेंगे? कौन एक दम आपको उधार देगा? नहीं, रुपया जो आपके पास मौजूद है, वही आपका है। शेष मिथ्या है।

संसार के कार्यक्षेत्र में भी शक्ति का यही नियम कार्य कर रहा है। हम जो कुछ कहते हैं, उससे नहीं परन्तु जो करते हैं (Action and achievement), उससे सफल कहलाते हैं। कार्य कर दिखाना—हमारी सफलता की कसौटी हो सकती है। कोई बातचीत या ज़बानी जमा खर्च नहीं। हम क्या कहते हैं, इससे नहीं, प्रत्युत किस प्रकार करते हैं, इससे लोगों से हमारे सम्बन्ध बनते बिगड़ते हैं।

सफलता की आधार शिला—आत्मविश्वास

"आत्मविश्वास का अर्थ है—ईश्वर की अनन्त शक्ति में विश्वास। जो असंख्य विपत्तियों से घिर जाने पर भी कार्य करता और कर्त्तव्य से च्युत नहीं होता वही सच्चा आत्म-विश्वासी है"

—गांधी जी

संसार में समुन्नत एवं अवनत जो दो प्रकार के व्यक्ति दिखाई देते हैं; उनके मानसिक संस्थान में अन्तर आत्मविश्वास का आधिक्य या न्यूनता है। समुन्नत व्यक्ति को अपनी शक्तियों के प्रति अमित विश्वास होता है, जबकि अवनत को अपने अन्दर विश्वास नहीं होता। आत्मविश्वासी जो कुछ करता है, पर्याप्त विचार और चिन्तन के पश्चात् करता है, जबकि इस गुण से विहीन व्यक्ति ढिल-मिल, अस्थिर, अनिश्चित स्वभाव का होता है। वह जो कुछ करता है आधे मन से करता है और उसके पग शिथिल से रहते हैं। आत्मविश्वासी के पग दृढ़ता से पड़ते हैं। वह जो कुछ करता है, दृढ़ संकल्पों से करता है। उसे अपने कार्य के प्रति उत्साह होता है, वह लगन और परिश्रम से प्रतिदिन अपनी उन्नति करता चलता है। मानव प्राणियों का कुछ ऐसा नियम है कि जो अपने अन्दर शक्ति और विश्वास रखता है उसके इर्द गिर्द अनेक व्यक्ति एकत्रित होते और उसके पथ-प्रदर्शन में चलते हैं, अपना नेता मानते हैं, किन्तु आत्मश्रद्धा विहीन व्यक्ति रबड़ की गेंद के समान अन्दर से खोखला, अस्थिर बना रहता है। श्रद्धाविहीन

व्यक्ति का जीवन उत्साह-हीन होता है। वह चलता फिरता है, दैनिक कार्य भी करता है पर उसके जीवन की अवस्था शून्य के समान निष्क्रिय और प्राण-हीन होती है।

आत्मविश्वासी दृढ़निश्चयी है, तो विश्वासविहीन, अस्थिर, चञ्चल और सन्देह से परिपूर्ण व्यक्ति है। एक में दृढ़ता है, तो दूसरा हर जगह से लचीला ढीला ढाला। एक का जीवन उद्देश्य से परिपूर्ण है, तो दूसरा निरुद्देश्य और उत्साहविहीन है। एक आकाश में उड़ते हुए मजबूत पक्षी के समान है, तो दूसरा पृथ्वी पर विफल पंख फड़फड़ाते हुए निष्क्रिय पक्षी के समान निर्बल है।

आत्म-विश्वास जीवन की आधार शिला है। एक उमङ्ग है, जिससे जीवन पुष्प खिल उठता है इस गुण से मुक्त व्यक्ति हंसमुख सरल स्वभाव रहता है। उसका हर एक पग दृढ़ता से रखा जाता है आत्मविश्वास साहस और पौरुष का पिता है। साहसी व्यक्ति तीव्रता से जीवन पथ पर अग्रसर होता है।

आत्मविश्वास से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य कायम रहता है। जिसे अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियों के प्रति विश्वास है उसकी शक्ति का कभी क्षय नहीं होता। वह निरन्तर स्वस्थ और प्रसन्न होता जाता है। इसके विपरीत जब मनुष्य का आत्मविश्वास जाता रहता है, तो वह रोगी निराश, दुःखी, अपने को भारस्वरूप बन जाता है ऐसे व्यक्ति का जीवन बड़ा कारुणिक एवं दुखपूर्ण होता है। विश्वास जाता रहने से लोग आत्महत्या तक करते हुए देखे गए हैं। आत्मविश्वास पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति का एक सहज स्वाभाविक लक्षण है।

आत्मविश्वासी में एक दैवी तेज होता है जिससे उसका मुख अपूर्व आभा से पूर्ण हो उठता है। सबको उसके प्रति विश्वास होता है।

आत्मविश्वास लुप्त हो जाने से मनुष्य का सामाजिक, शारीरिक, मानसिक क्षय हो जाता है। पुनः इस दैवी गुण के विकास से शक्ति आने लगती है और मनुष्य पूर्ववत् खड़ा हो जाता है।

प्रो० लालजी राम शुक्ल का मत है, "मनुष्य की किसी बात में कार्य-क्षमता उसके आत्मविश्वास पर निर्भर करती है। यह आत्म-विश्वास सच्चे आध्यात्मिक चिन्तन का परिणाम है। जो मनुष्य वर्त्तमान काल के कर्त्तव्य पर ही अपने ध्यान को केन्द्रित करता है और बची हुई शक्ति को आध्यात्मिक चिन्तन में लगाता है, उसका आत्मविश्वास नष्ट नहीं होता। जो व्यक्ति प्रत्येक काम में आगे पीछे की बात को बहुत कुछ सोचता रहता है, जो भविष्य के बारे में अत्यधिक चिन्तित रहता है वह अपनी बहुत सी शक्ति को व्यर्थ की चिन्ता में खो देता है। ऐसे व्यक्ति का आत्मविश्वास नष्ट हो जाता है। फिर उसकी कार्य-क्षमता भी जाती रहती है और उससे अनेक प्रकार की भूलें होती रहती हैं।"

स्काट लैण्ड का राजा ब्रूस एक बार शत्रुओं से पराजित हो कर अपना राज्यपाट खो बैठा। उसने कई बार प्रयत्न किए किन्तु सब विफल रहा। बार बार पराजित होने पर उसका आत्मविश्वास लुप्त हो गया। वह दुःखी निराश शत्रुओं से बचने के लिए एक गुफा में छिपा पड़ा था। उसका मन कष्टों और अभावों की कुकल्पना में व्यस्त था। वह संसार को दुःखमय समझ कर अपने जीवन को धिक्कार रहा था। मन तो बड़ा हठीला, चंचल, दृढ़ और बलवान् है। जब यह नैराश्य और निर्बलता की ओर उन्मुख होता है, तो अपने प्रति संदेह, दुःखों, विफलता, अवगुण, कमजोरी से परिपूर्ण हो उठता है। ब्रूस ने देखा एक मकड़ी गुफा के द्वार पर जाला बुनने का विफल प्रयत्न कर रही है। वह बार बार गिरती है पर पुनः नए उत्साह लगन अध्यवसाय से प्रयत्न करती है। मकड़ी के प्रयत्नों की निष्फलता ने उसे

संकल्प-विकल्प में डाले रखा। कुछ देर पश्चात् उसने देखा कि मकड़ी एक सूक्ष्म तन्तु को बुनने में सफल मनोरथ हो गई। जाला बढ़ता गया और अन्त में वह उसे पूर्ण कर सकी। ब्रूस सोचने लगा, "इस क्षुद्र निर्बल मकड़ी में भी कितना प्रयत्न, श्रम, लगन और परिश्रमशीलता है। इसने चंचल चित्त को इष्ट सिद्धि में एकाग्र किए रखा। विफलता की परवाह न की प्रत्युत दृढ़ता से लक्ष्य पर लगी रही। मैं भी पुनः प्रयत्न करूँगा और अवश्य सफल मनोरथ हूँगा। मैं चित्त-विक्षेप नहीं होने दूँगा, पुनः-पुनः प्रयत्न करूँगा, मन को एकाग्र करूँगा"। उसका आत्मविश्वास जाग्रत हो गया। ऐसा सोच कर वह मुस्तैदी से अपने काम में लग गया। उसने टूटी फूटी सेना और रुपया संग्रह किया। एक दिन वह पूरी सफलता प्राप्त कर सका।

आत्म विश्वासी धैर्यवान होता है। वह विफलता से घबराता नहीं। अपना अभ्यास जारी रखता है। कभी निराश नहीं होता। चंचल और अस्थिर चित्त जहां जहां दौड़ दौड़ कर जाता है, आत्म-विश्वासी पुनः पुनः उसे अपने लक्ष्य पर लगाता है। एकाग्रता से शक्ति आती है। धैर्य का प्रादुर्भाव होता है।

चाणक्य की सफलता का मूल कारण उसका आत्मविश्वास था। एक बार चाणक्य के पाँव में एक कांटा लग गया था। इस पर उसे इतना क्रोध आया कि उसने जब तक उस कंटीली झाड़ी की जड़ें न खोद डालीं तब तक विश्राम नहीं किया। उसने उस कुशा को अणु अणु कर के ही छोड़ा। ऐसा था उस काले कलूटे ब्राह्मण का आत्म-विश्वास।

चाणक्य दरिद्र था, काला स्याह बदसूरत व्यक्ति था लेकिन उसमें आत्मविश्वास और शक्ति कूट कूट कर भरी हुई थी। सभा में चाणक्य को अपमानित किया गया। दरिद्र चाणक्य का क्रोध जाग्रत हो उठा। उसने प्रतिज्ञा की कि वह महानन्द से प्रतिशोध लेगा। जब तक नन्द वंश का नाश न कर देगा तब तक अपनी चोटी न बांधेगा। चाणक्य

का आत्मविश्वास इतना दृढ़ था कि उसके प्रयत्न सफल हुए। परिस्थितियाँ उसकी चेरी बनीं और अन्ततः उसने नन्दवंश का नाश ही करके छोड़ा।

हिटलर, मुसौलिनी, को अपनी शक्तियों के प्रति अमित विश्वास था। यद्यपि वे कुटिलता की ओर बढ़े और नाजीवाद का प्रचार किया, पर एक दिन उनकी शक्तियों के सम्मुख सम्पूर्ण यूरोप थर्रा उठा था। राणा प्रतापसिंह मुगलों से अन्त समय तक लड़ते रहे। राजपरिवार ने जंगलों में असंख्य कष्ट झेले। कुछ इने गिने राष्ट्रवादी देश-भक्तों और भीलों के अतिरिक्त उनका कोई सहायक न था। केवल आत्म-विश्वास ही उनका मित्र, उनकी शक्ति, उनकी मूल प्रेरणा थी। शिवाजी ने थोड़ी सी सेना की सहायता से मरहठा राज्य की स्थापना की थी। उन्होंने जीवन भर अपना ही सहारा देखा। सिद्धार्थ ने आत्मविश्वास के बल पर राजपाट त्याग कर दिया था और जीव ब्रह्म आत्मा का साक्षात्कार कर उपरामता को प्राप्त हो धैर्ययुक्त बुद्धि से परमात्मा में लीन हो गए। उन्होंने आत्मविश्वास के बल पर जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, और रोग आदि पर विजय प्राप्त की।

इसी प्रकार के अनेक उदाहरण हमें इतिहास, पुराण, महाभारत, रामायण इत्यादि ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं जिन से प्रतीत होता है कि मनुष्य परिस्थितियों, भाग्य या घटनाओं का दास नहीं है। वह अपने अन्दर एक गुप्त आध्यात्मिक शक्ति रखता है जिस से उसके शरीर में तेज, कार्य में दृढ़ता और संकल्पों में शक्ति आती है। कठिनता का अंधकार विलुप्त होकर सफलता का प्रकाश आता है, उद्देश्य की बाधाएँ दूर होती हैं, कठिन कार्य सफल बनते हैं। यह शक्ति उसका जीता जागता आत्म-विश्वास है।

मनुष्य की आत्मा असंख्य शक्तियों की भंडार है। आत्मशक्ति प्राप्त करने वाला साधक चाहे जो क्षेत्र चुन ले सर्वत्र सफल होता जाता है।

नौकरी, व्यापार, राजनीति, धर्म, समाजसेवा, विद्याप्राप्ति, राज्य-शासन, वकालत, वैद्यक—चाहे जो भी कार्य क्षेत्र चुना जाय सर्वत्र मनुष्य का आत्मविश्वास ही सिद्धि में सहायक होता है।

तुम्हारा परमात्मा है, परमात्मा का बल तुम में है। तुम्हारी आत्मा ही परमात्मा का लघु स्वरूप है। यदि तुम्हें ईश्वर को देखने की आकांक्षा है, तो उसे निज हृदय में ढूँढ़ो। अपनी आत्मशक्ति से तुम ईश्वर को अपने अन्दर देख सकते हो। तुम्हारे रक्त की बूँद में ईश्वरीय शक्ति का दिव्य प्रवाह बह रहा है। वह ब्रह्म सत्य, ज्ञानस्वरूप एवं अनन्त है। वह ज्ञानमय, चैतन्य और आनन्दस्वरूप है। वह तुम्हारी आत्मा में पैठकर तुम्हें नित्य और अद्वितीय शक्ति, साहस, पौरुष प्रदान कर रहा है। परब्रह्म परमात्मा का स्वरूप होने के कारण आपको अपनी शक्तियों की पूँजी सम्हालनी चाहिए। शक्ति पाकर निर्बल और पंगु नहीं रहना चाहिए। सच मानिए, आपको अपने अन्तर्जगत् से अतुल सामर्थ्य और शक्ति प्राप्त हो सकती है यदि आप हृदय में स्थित विराजमान परमदेव के दर्शन कर लें। हानि लाभ, जय-पराजय, यश-अपयश, मान-अपमान सब में परमात्मा के बल से सामर्थ्य ग्रहण करते रहिए।

अपने हृदय में यह बात अच्छी तरह स्थिर कीजिए कि आप योग्य हैं, प्रतिभाशाली हैं, शक्तिवान् हैं। अपने उद्देश्य की ओर वीरता और धैर्यपूर्वक पांव उठा रहे हैं। परमेश्वर ने कूट-कूट कर आप में अद्भुत योग्यताएँ भरी हैं।

आत्म-संकेत दिया करें। शान्त चित्त से मन में पुनः पुनः इस प्रकार के विचारों को प्रचुरता से स्थान दें कि 'मैं बलवान् हूँ, दृढ़ संकल्प हूँ, सब कुछ करने में समर्थ हूँ। मैं जिन पदार्थों की आशा-अभिलाषा करता हूँ, वह अवश्य प्राप्त करूंगा। मैं दृढ़ता से अपने

उद्देश्य की ओर अग्रसर हो रहा हूँ। मुझ में मानसिक धैर्य है। मेरा मानसिक संस्थान आत्म-विश्वास से परिपूर्ण है। मैं धैर्यपूर्वक अपने उद्देश्य की ओर पांव उठा रहा हूँ। मैं विघ्न बाधाओं से विचलित नहीं होता हूँ।"

शक्तिशाली आत्म-संकेत में अद्भुत शक्ति है। जिन विचारों के सम्पर्क में हम रहते हैं, जिन में पुनः पुनः रमण करते हैं वैसे ही बन जाते हैं। ये संकेत हमारे मानसिक संस्थान के एक अंग बन जाते हैं। प्रकाशमय विचारधारा से कंटकाकीर्ण और अन्धकारमय पथ भी आलोकित हो उठता है।

जब आप दृढ़ता से कहते हैं, 'मैं बलवान् हूँ, दृढ़संकल्प हूँ, गौरवशाली हूँ।" तो इन विचारों से हमारा आत्मविश्वास जागृत हो उठता है। हम साहस और पौरुष से भर जाते हैं और आत्मगौरव को समझने लगते हैं। हमारी शक्तियां वैसा ही काम करती हैं जैसी हम उन्हें आज्ञा देते हैं।

आत्मविश्वास पाने के लिए सफलता जादू जैसा प्रभाव डालती है। एक सफलता से मनुष्य दूसरी सफलता के लिए प्रेरणा पाता है। आप पहले एक साधारण कार्य चुन लीजिए और दृढ़ता से उसे पूर्ण कीजिए। जब यह पूर्ण हो जाय, तो अधिक बड़ा काम हाथ में लीजिए। इसे पूरा करके ही छोड़िए। तत्पश्चात् अधिक बड़े और दीर्घ कालीन अपेक्षाकृत कष्ट साध्य कार्य हाथ में लीजिए और अपनी समस्त शक्ति से उसे पूर्ण कीजिए।

इस प्रकार क्रमानुसार बड़े-बड़े कार्य हाथ में लेते जाइए। शर्त यह है कि ये सब काम पूर्ण ही हों, अपूर्ण न छूट जांय। अपूर्ण प्रयत्न आत्मविश्वास के घातक हैं। अतः, आप जो कुछ हाथ में लें उसे पूर्ण करके छोड़ें। अधूरा प्रयास न रह जाय। दस सफलताओं के

पश्चात् एक असफलता भी आ गई तो वह हमें संशय से भर देती है। लेशमात्र भी संशय घातक सिद्ध होगा। एक बार कार्य हाथ में लेकर उसे पूर्ण करने में प्रत्येक प्रयत्न कर देखें।

आपका मन कर्त्तव्य से, कठोर मेहनत से दूर भागेगा, उस कार्य को बीच में ही छोड़ने की ओर प्रवृत्त होगा। इस पलायन प्रवृत्ति से आपको सावधान रहना होगा। मन से लगातार लड़ना चाहिए और जब यह निश्चित मार्ग से च्युत होना चाहे, तुरन्त सावधानी से कार्य लेना चाहिए। कभी आप को आलस्य आयेगा, अपना कार्य मध्य ही में छोड़ देने को जी करेगा, लालच मार्ग में दिखाई देंगे लेकिन आप छोटे लाभ के लिए बड़े फायदे को मत छोड़िए। भूल कर भी चञ्चल मन के कहने में मत आइए, प्रत्युत विवेक को जागृत कर उसके संरक्षण में अपने आपको रखिए। जाग्रत समय में मन को निरन्तर कार्य में लगाये रखिए। जब तक जागते हैं किसी उत्तम कार्य में अपने आपको संलग्न रखें, तत्पश्चात् सोयें। सुप्तावस्था में भी आप मन की चञ्चलता से दूर रह सकेंगे। धीरे-धीरे धैर्यपूर्वक अभ्यास से मन की चञ्चलता दूर होती है।

गीता में मन को वश में करने के लिए बड़े सुन्दर उपाय बताए गए हैं :—

शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिंतयेत्॥
(गीता ६।१५)

"धीरे धीरे अभ्यास करता हुआ उपरामता को प्राप्त हो, धैर्ययुक्त बुद्धि से मन को परमात्मा में स्थिर करके और किसी भी विचार को मन में न आने दे।"

अपने कार्य में समस्त शक्तियां लगाएँ। धैर्यपूर्वक निज उद्देश्यों

की प्राप्ति में मन को एकाग्र किए रहें। स्थिर मन आपकी शक्तियों का भण्डार है।

व्रत, उपवास, स्नान, पूजन, मन को सदैव सत्कार्य में लगाए रखना, सारे कार्य नियम पूर्वक करना अनिष्टकर चिन्तन से बचना, मन के विपरीत कार्य करना—ये अन्य साधन हैं जिनका पालन करने से आत्मविश्वास बढ़ता रहता है। नवरात्रि में नौ दिन का व्रत संयम का एक अच्छा साधन है। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय इन सप्त व्रतों के निरन्तर अभ्यास से दृढ़ता आती है।

माता-पिता को चाहिए कि बच्चों के शुभ संकल्पों को न तोड़ें। बार बार उन पर अपना मन्तव्य लादने से उनमें पराजयवाद की दुर्बलता आ जाती है। उन्हें निरन्तर अच्छे कार्यों में प्रोत्साहन देना चाहिए। प्रोत्साहन से बच्चों में अपनी शक्तियों के प्रति विश्वास उत्पन्न हो जाता है। किसी बच्चे को प्रताड़ित कर उसकी उमङ्गों को कुचल डालना बड़ा भारी पाप है।

आत्मविश्वास एक आन्तरिक प्रेरणा है। प्रायः देखा जाता है कि मनुष्य वाह्य जगत् से प्रेरणा का सहारा देखा करता है। जब बाहर से प्रोत्साहन प्राप्त नहीं होता, तो निराश हो जाता है। यह स्थिति बड़ी चिन्त्य है। आप बाहर से प्रेरणा की आशा क्यों करते हैं? स्मरण रखिये किसी दूसरे को आप में रुचि नहीं है। स्वयं आपको अन्दर से प्रेरणा लेनी होगी। आपका आत्मविश्वास स्वयं आपकी ही विकसित चीज है। आपके संकल्पों और मन्तव्यों की दृढ़ता किसी बाह्य व्यक्ति में आधारित न होकर आन्तरिक प्रेरणा पर टिकनी चाहिए। आत्मविश्वास में भी स्वावलम्बन से काम लें।

पलायन की कुप्रवृत्ति अर्थात् अपने काम को मध्य में ही छोड़ भागना और पूरा न करना आत्मविश्वास-विरोधिनी शक्ति है। पलायन की वृत्ति जैसे ही मन में उत्पन्न हो, तो समझ लीजिए कि

काम का कठिन भाग आ गया है। इसी स्थिति में सम्हलने की आवश्यकता है। अतः, कठिनता को भूल कर चंचल चित्त को अपने कार्य से स्थिर रखना चाहिए।

कभी कभी अपनी सफलता पर फूल कर मनुष्य लम्बी कष्टसाध्य कठिन योजनाएं बनाता है। वह ऐसे कार्य उठा लेता है जो उसकी शक्ति-सामर्थ्य के बाहर की बात होती है। इन कार्यों में विफल हो कर वह आत्मविश्वास का क्षय करता है। कार्य की अपूर्णता अपनी शक्तियों के प्रति अविश्वास उत्पन्न कर देती है। साधक को चाहिए कि ऐसी योजनाएं ही हाथ में ले जिसमें वह सफल मनोरथ हो सकता हो और जो उसकी आत्म शक्तियों की पहुंच के भीतर हों। शक्ति-सामर्थ्य से अधिक भार वहन करने वाले की सब सफलता इस प्रकार विफलता में बदल सकती है। अपनी शक्ति का पूरा पूरा ज्ञान रखिए और सामर्थ्य के अनुसार ही भार उठाइए।

शक्ति के अनुसार भार उठाने पर अपनी सम्पूर्ण शक्तियों से उसे पूर्ण करने में संलग्न हो जाइए और भविष्य के बारे में अधिक चिन्ता मत कीजिए। व्यर्थ का शक-शुबा, चिन्ता, उथल-पुथल आत्म-विश्वास को क्षय करता है।

प्रायः मनुष्य की गुप्त शक्तियों का विकास यकायक नहीं होता। कुछ व्यक्ति बड़े होकर अपना विकास कर पाते हैं। पर यह बात सर्व-सिद्ध है कि साधारण योग्यताओं वाला व्यक्ति भी अभ्यास एवं लगन से केवल आत्म-विश्वास के कारण अपनी कार्यशक्तियां कई गुनी बढ़ा सकता है। निरन्तर एक ही विषय या तत्व का अभ्यास करते रहने से उसमें उच्चता प्राप्त हो जाती है। जिसे अपने कार्य की लगन है, उसकी कार्य-कारिणी शक्तियाँ किसी न किसी दिन अवश्य जागृत होंगी। प्रायः कुछ व्यक्ति अपनी स्थितियों के विरोधी होने की शिकायत किया करते हैं। "हमें अमुक साधन प्राप्त होते, तो हम भी उन्नति

कर लेते" —यह उक्ति उन व्यक्तियों की है जिनमें आत्मविश्वास की न्यूनता है। सफलता की जड़ मनुष्य के मन में है। उसके आत्म-विश्वास से सिंचित होकर सफलता का पौदा उगता है। जिसके अन्दर कार्य-कारिणी शक्ति है, जो अपने आत्मविश्वास से किसी काम में तन,मन, आत्मा से जुटा हुआ है, वह एक न एक दिन अवश्य बाह्य साधन एकत्रित कर लेगा। हमारी बाह्य परिस्थितियाँ आन्तरिक कार्य-कारिणी शक्ति का अनुसरण करने वाली हैं। जो शक्तियां हमें अन्दर से प्राप्त हुई हैं, वे बाह्य जगत में प्रकट होकर रहेंगी।

स्मरण रखिये, आप मनुष्य हैं। मनुष्य जगत्-नियन्ता की सर्वोत्कृष्ट शक्तिसम्पन्न कलाकृति है। सबसे उत्तम दैवी शक्तियों द्वारा उसके शरीर,मन और आत्मा का निर्माण किया गया है, सभी के लिए सुख-समृद्धि की दैवी योजनाएँ बनी हुई हैं। अपने आलस्य, प्रयत्न की कमी और अकमर्ण्यता का दोष परमात्मा पर मढ़ना उचित नहीं है। यदि हम अपनी शक्तियों के प्रति विश्वासी बन कर कार्यरत हो जांय तो निश्चय जानिए हम अपनी गुप्त शक्तियों के भण्डार को खोल सकते हैं। प्रत्येक कलाकार अपनी कृति में अपने ही गुणों, आदर्शों एवं दृष्टिकोण को प्रकट करता है। कलाशिरोमणि ईश्वर ने मनुष्य में अपनी सम्पूर्ण योग्यताएँ, दैवी गुण, विशेषताएँ प्रकट की हैं। आप अपने चरित्रों में इन्हें क्यों नहीं प्रकट करते? क्यों इनका विकास नहीं होने देते? शरीर के भीतर साक्षात् परमात्मा अपनी सम्पूर्ण शक्तियों में प्रकट हो रहा है, अणु-अणु में रम रहा है। उसी परम तत्त्व को अपने कार्यों में प्रकट करो। अपनी देह, प्राण और हृदय को उसी से संजीवित करो। क्या तुमने वेद का यह अमर संदेश नहीं सुना है कि—

"एको देवः सर्वभूतेषु गूढः,
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः,
साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥"

(अर्थात् वह एक ही परमात्मा हम सब मनुष्यों (तथा अन्य प्राणियों) के अन्तर में छिपा हुआ है। वही सर्वत्र व्याप्त है। वही हम सब जीवों का अन्तरात्मा है। जो कुछ जगत् में कार्य हो रहा है, उसका नियन्ता है। सब प्राणियों के भीतर बस रहा है। सब संसार के कार्यों को वह साक्षी रूप में देखता है। उसका कोई जोड़ नहीं। वह सब दोषों से रहित है।)

आत्मविश्वास द्वारा दैनिक जीवन तथा कार्यों में अपने दैवी स्वरूप को प्रकट करते चलिए। पशुत्व की कोटि से ऊंचा उठने के लिए ईश्वरीय शक्ति का साहचर्य हमारे बड़े काम का तत्त्व है।

इस संसार में आप एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं। संसार को आप की बहुत जरूरत है। परमेश्वर ने आपको देवदूत बना कर स्वयं प्रसन्न और समृद्ध रहने, जगत से अज्ञान दूर करने, सत्य, न्याय और दया का प्रचार करने के लिए भेजा है। अपने इस स्थान को ग्रहण कीजिए। सच मानिए, इस दैवी सन्देश के लिए, मनुष्यों में परस्पर प्रीति, सुख, शान्ति-वृद्धि के हेतु कार्य करने के लिए आपमें पर्याप्त बुद्धि और शक्ति है।

इच्छाशक्ति की दृढ़ता

आत्मविश्वास के पश्चात् सफलता तथा प्रगति मनुष्य की इच्छाशक्ति की दृढ़ता पर निर्भर है। लोग इच्छा करते हैं कि उच्च अधिकारी बनें, समृद्ध व्यापारी बनें, सम्पत्ति प्राप्त करें, मान-पद-प्रतिष्ठा के स्वामी बनें। ये इच्छाएं उनके हृदय-सरोवर में पानी के बुल-बुलों के समान उठती और विनष्ट होती रहती हैं। वे उन फ़क़ीरों की भाँति हैं, जो कपोल-कल्पनाओं में लग कर हवाई क़िले बनाया करते हैं। उनकी यह कल्पना किसी भी लाभ की नहीं है, क्योंकि ये लोग जीवन की व्यावहारिकता, अड़चनें और अपनी शक्ति-सामर्थ्य को न सोच कर बिना किसी क्रम के अस्त-व्यस्त चिन्तन करते रहते हैं। यह मनुष्य की एक भारी निर्बलता है।

जब तक आपकी इच्छाओं में दृढ़ता नहीं आती, तब तक यह मनोवृत्ति दूर नहीं हो सकती। इच्छा वही ठीक है, जिसे आप पूर्ण कर सकें, जिसके लिए आपके पास शक्ति-सामर्थ्य हो, जो आपके वश की बात हो। यदि कोई फ़क़ीर राजा बनने की इच्छा करे तो उसके लिए यह उपहासास्पद ही कहा जायगा। जिसके पास अर्थ नहीं, वह समृद्धिशाली जीवन के स्वप्न देखने लगे, तो उनसे क्या लाभ? इच्छाशक्ति की दृढ़ता का महत्व इस बात में है कि वह हमें व्यावहारिक रूप से सोचना विचारना सिखाती है। वह हमारे संकल्पों को एकाग्र कर देती है। जो संकल्प सम्भव हैं, उन पर हमें दृढ़ करती है; उचित-अनुचित, संभव-असंभव, का विवेक बताती है।

अच्छे उपयोगी विचारों का मन की चेतना पर रखना, उन से निरन्तर प्रेरणा प्राप्त करना और बुरी और असम्भव बातों को रोकना इच्छाशक्ति के विवेक पर निर्भर है। जब आप यह आदत बना लेते हैं कि उपयोगी और संभव विचारों को ही चेतना के ऊपरी स्तर पर रखेंगे तो इच्छाशक्ति की दृढ़ता बुरे विचारों को रोके रहेगी। निराशा, अनुचित और असंभव के सब विचार दूर रहेंगे। इच्छा-शक्ति की दृढ़ता एक कुशल पथ-प्रदर्शक की तरह है, जो मोटर के पहियों को लीक में डाले रहती है, पथभ्रष्ट नहीं होने देती। ढीली इच्छा शक्ति वाली प्रवृत्ति मन को इधर उधर भड़काती है, कार्यों में अनियमतता उत्पन्न करती है, भोगों में आकर्षण तथा प्रपंचों की ओर प्रवृत्ति पैदा करती है। इच्छाशक्ति की दृढ़ता हमें ठीक समय पर उचित काम करना सिखाती है, हमारी वृत्तियों पर नियंत्रण करती है और अन्तर्दृष्टि की वृद्धि करती है।

निर्बल इच्छाशक्ति वाला व्यक्ति बाह्य साधनों, परिस्थितियों, या शक्तियों को मुख्य समझता है, जब कि दृढ़ इच्छा वाला स्वयं परि-स्थितियों का निर्माण करता है। पहले प्रकार का व्यक्ति नियतिवादी (भाग्यवादी) होता है, तो दूसरी प्रकार का व्यक्ति पुरुषार्थी और अपने भाग्य का विधाता होता है। भाग्यवादी स्वयं तो प्रयत्न करता नहीं, केवल अपने भाग्य को दोष देकर अपनी गिरी हुई स्थिति से सन्तुष्ट हो जाता है। वह सोचता है, "भाग्य में बदा होगा, तो मेरी बुद्धि बढ़ेगी। भाग्य ने चाहा तो मैं अमीर बनूँगा। भाग्य ने साथ दिया तो मेरी उन्नति होगी। भाग्य का ही सर्वत्र विधान है। यदि भाग्य में लिखा है तो कार्य होना अवश्यम्भावी है। फिर प्रयत्न भी क्यों करूं? हाथ पाँव भी क्यों मारूँ। दूसरों से व्यर्थ ही क्यों मिलूं? क्यों शक्तियों की वृद्धि करूं?" इस प्रकार की पोच और दुर्बल-विचार-धारा मनुष्य की उन्नति में घातक है।

इच्छाशक्ति को बलवती कैसे बनाएँ ?—

सर्व प्रथम विचारों का नियन्त्रण सीखिए। अर्थात् मन में वे ही विचार आने दीजिए, जो उपयोगी और हितैषी हैं, जिन से उन्नति में तथा शक्तियों के विकास में सहायता प्राप्त हो। अहितकर, अपने विरोधी, निर्बलता की स्मृति दिलाने वाली विचारधारा को मनोमंदिर में प्रविष्ट मत होने दीजिए। अनुचित और सामर्थ्य से बाहर की इच्छाओं को मन में स्थान मत दीजिए।

किसी भी शक्ति को विकसित करने के निमित्त हमें उसका अधिकाधिक प्रयोग करना चाहिए। जिन शक्तियों का नियमित अभ्यास किया जाता है, वे उत्तरोत्तर बढ़ती हैं। इसके विपरीत जिन्हें व्यर्थ ही निष्क्रिय छोड़ दिया जाता है वे लुप्त हो जाती हैं। इच्छाशक्ति को बलवती बनाने के लिए इस शक्ति का भी अधिक उपयोग कीजिए। पहले ऐसे छोटे-छोटे कार्य हाथ में लीजिए, जिन्हें करने की आप में सामर्थ्य है। इन में से जो कार्य हाथ में लें, उसी में सफलता प्राप्त करते चलिए। प्रत्येक सफलता, चाहे वह कितनी ही छोटी क्यों न हो आपकी इच्छा शक्ति को बलवती बनाती है। Nothing Succeeds Like Success अर्थात् सफलता से बड़ी उत्साह देने वाली अन्य कोई शक्ति नहीं है। फिर क्रमशः पहले की अपेक्षा कुछ बड़े कार्य हाथ में लीजिए और पहली ही तरह इन में प्रयत्न कीजिए कि सफलता अवश्य प्राप्त होती जाये। प्रत्येक सफलता आपकी इच्छाशक्ति को बलवती बनाने वाली है।

परमार्थ के कार्यों में मनुष्य जितना लगता है, उतना ही उसका स्वार्थ और अहंकार दूर होता है। जिस अनुपात में आप स्वार्थ और अहंकार से दूर होते हैं, उतने ही अनुपात में ऊँचे उठते और मज़बूत बनते हैं। परमार्थ, देश, समाज और जाति की सेवा के कार्यों को करते

से मनुष्य की इच्छाशक्ति में दृढ़ता आती है। परोपकार के समान इच्छाशक्ति को मज़बूत बनाने वाली दूसरी वृत्ति नहीं है।

शक्ति पर भरोसा करने से सचमुच शक्ति आती है। शक्तिशाली होते हुए भी वह व्यक्ति संसार में अधिक कमज़ोर है जिसे अपने आप पर और अपनी शक्ति पर भरोसा नहीं है।

भाग्यवाद का वहम त्याग कर पुरुषार्थवादी बनिये। अपने प्रयत्नों पर निर्भर रहना सीखिए। जो व्यक्ति अपनी ज़िम्मेदारी सदा दूसरों पर डाले रहता है वह कभी इच्छाशक्ति को नहीं बढ़ा सकता।

हमारे देश में व्रत, उपवास आदि का विधान रहा है। ये साधन मनुष्य को अपने ऊपर नियंत्रण करना सिखाते हैं और इन्हें पूरी निष्ठा से करना अपनी इच्छाशक्ति को बढ़ाने का साधन है।

हमें ईश्वर से शक्ति का स्रोत मिल रहा है। हमारी शक्ति का अन्त नहीं है। हमें सदैव ईश्वर से उच्चतम शक्ति मिलेगी और निरन्तर मिल रही है—ऐसी ईश्वरवादी आस्तिक भावना रखने से मनुष्य को इच्छाशक्ति का ऐसा दृढ़ आधार मिल जाता है जिस से उसे सर्वत्र सफलता प्राप्त होती है।

सावधान! कोई ऐसा बड़ा या कठिन काम हाथ में न ले बैठिये जो आपकी सामर्थ्य के बाहर का हो, या जिसे आप पूर्ण करने के लिए उचित साधन एकत्रित न कर सकते हों। प्रायः अदूरदर्शी लोग ऐसे कठिन कार्य हाथ में ले बैठते हैं, जो वे पूर्ण नहीं कर पाते। वास्तव में वे कार्य उनकी सामर्थ्य के योग्य नहीं होते प्रत्युत असफलता प्रदान कर संचित इच्छाशक्ति को भी मार डालते हैं। अपने साधनों का विवेकपूर्ण सन्तुलन करने के बाद ही कार्य में हाथ डालना उचित है। आप स्वयं निर्णय कीजिए कि अमुक कार्य आपकी सामर्थ्य के भीतर है या नहीं? संभव है आप में कुशाग्रता हो, बुद्धि की भी कमी न हो,

पर आर्थिक अड़चनें मार्ग में आ सकती हैं। पारिवारिक स्थिति, सामाजिक बन्धन, अधिकारियों की सिफ़ारिशें आपको अशक्त कर सकती हैं। अतः, कार्य को हाथ में लेने से पूर्व पर्याप्त सोच लीजिए। पर जो कार्य आप हाथ में लें उस में सफलता अवश्य मिलनी चाहिए तभी इच्छाशक्ति में वृद्धि होगी। निरन्तर नए-नए कार्य करना और प्रयत्नों द्वारा सफलता प्राप्त करना व्यक्तित्व का विकास करता है।

अन्तिम निश्चय किया करें

ओरिसन स्वेड माडिन साहब ने सफलता का रहस्य बताते हुए लिखा है, "अंतिम दृढ़ निश्चय ही विजय का सोपान है।" जब जूलियस सीजर ने इंगलैण्ड में अपनी सेनाएँ उतारीं तो उसने यह निश्चय कर लिया था कि अब बिना विजय किए वापस नहीं लौटना है। वह अपनी सेना के सिपाहियों को यह स्पष्ट बता देना चाहता था कि उनके आक्रमण का अर्थ या तो विजय था, अथवा मृत्यु। अतः, उसने उनके सामने ही उनके जहाजों को जलवा डाला, जिस से वे वापसी की, अधूरे निश्चय की बात ही न सोच सकें। जब वह इटली की एक सीमा रूबीकौन पर आया तो उसका निश्चय डोल उठा। यह ऐसा प्रदेश था जिस पर किसी ने अभी तक आक्रमण न किया था। "मैंने अपना पासा फेंक दिया है। मुझे अब अन्तिम रूप से पूरा प्रयत्न करना है"—उस ने कहा। पूरे-पूरे प्रयत्न से सीजर सम्पूर्ण शक्ति लगा कर युद्ध में प्रवृत्त हुआ। वह विश्व का एक महान् विजेता बना।

सीजर का वह वाक्य "मैंने अपना पासा फेंक दिया है" उपदेश ग्रहण करने योग्य है। किसी महत्वपूर्ण कार्य को हाथ में लेकर युवक प्रायः यही गलती करते हैं, वे पूरे तौर पर अपनी शक्तियां नहीं लगाते। वे अपने जहाज नहीं जलाते। इस लिए वे वापस लौट जाने की बात सोचा करते हैं। तनिक सी कठिनाई होते ही वे अपने निश्चय छोड़ बैठते हैं; मुड़ कर फिर अनिश्चय की स्थिति में पहुँच जाते हैं।

आप अपनी गुप्त शक्तियों का स्रोत तब तक नहीं निकाल सकते, जब तक आप वापस लौटने या कार्य को मध्य में छोड़ने की बात सोचते रहें। उस सैनिक की कल्पना कीजिए, जो युद्ध में लड़ रहा है; किन्तु जानता है कि जहाँ युद्ध तीखा हुआ मुझे वापस पीछे लौट जाने का मार्ग खुला है। वह समय की कठिनाई पाकर एकदम वापस ही लौट जायगा। पूरी ताकत से कभी भी न लड़ेगा। यदि उसे मालूम हो जाय कि अब युद्ध के अतिरिक्त बचने का दूसरा कोई मार्ग खुला हुआ नहीं है, तब ही वह पूरे जोर से अपनी शक्तियों को कार्य में ला सकेगा। निराशा और अधूरेपन की जो भावना मन में रहती है उससे मुक्ति का यही उपाय है कि मनुष्य ऐसी स्थिति में फँस जाय, या जान-बूझकर अपने आप को फाँस ले कि वापसी का रास्ता न रहे।

इतिहास में हमें बहुत से ऐसे सेनानायकों का वृतान्त उपलब्ध है, जिन्होंने पीछे लौटने की वृत्ति को सिपाहियों के मन से निकालने के लिए पुल तुड़वाये थे। जब पीछे हटने का रास्ता नहीं रहा, तो सैनिक पूरी शक्ति से लड़े, उनके निश्चय दृढ़ बने रहे, मन और शरीर की सर्वोच्च शक्तियों की पूरी पूरी सहायता उन्हें प्राप्त होती रही, अन्त में उन्होंने इतना घमसान युद्ध किया कि विजय उन्हीं के हाथ रही। जब मनुष्य देखता है कि अधूरे काम से मृत्यु तक हो सकती है, तो वह अपनी पूरी-पूरी कोशिशें कार्य में फेंककर अपने प्राणों की रक्षा करता है।

राजपूतों की सफलता का कारण उनकी वीरता है। लेकिन नहीं, इससे भी बड़ी उनकी एक और शक्ति थी। वह थी जौहर की प्रथा। जब वे देखते थे कि अब बचने का कोई मार्ग शेष नहीं रहा है; मृत्यु अवश्यम्भावी है, तो केसरिया बाना पहिन कर किले के फाटक खोल निकल आते थे। घमसान युद्ध करते थे। प्रायः स्त्रियां दूसरा मार्ग न देख जौहर कर लेती थीं। संसार से तटस्थ होकर अपनी समूची

शक्तियों को जाग्रत कर दृढ़विश्वासी राजपूत अनेक भयंकर युद्धों में सफल हुए।

मनुष्य का निर्माण कुछ इस प्रकार का है कि जब तक हम देखते हैं कि निश्चय से पीछे लौट जाने का मार्ग खुला है, तब हमें बार-बार वापस लौट जाने का प्रलोभन मन में रहता है। जहाँ तनिक सी कठिनाई उपस्थित हुई कि हम बाहर भाग खड़े हुए।

जेनरल रोजीक्रैन्स ने कहा—"क्या तुम इस दुर्ग की रक्षा कर सकोगे?"

दूसरे जेनरल ने उत्तर दिया,

"मैं प्रयत्न करूँगा।"

पुनः प्रश्न दोहराया गया,

"क्या तुम दुर्ग की रक्षा करोगे?"

इस बार उत्तर था, "मैं दुर्ग की रक्षा में मृत्यु तक का आलिंगन करूंगा।"

पुनः पूछा गया,

"इससे काम नहीं चलेगा। मेरी ओर देखो और बताओ कि क्या तुम दुर्ग की वास्तव में रक्षा करोगे।"

अन्तिम उत्तर था, "मैं दुर्ग की रक्षा करते-करते मरना पसन्द करूंगा। मैं अवश्य रक्षा करूंगा।"

जब आप इतनी दृढ़ता से कोई बात स्वीकार करते हैं, तो इसका दूसरा तात्पर्य पुल तोड़ना या जलाने के समान ही होता है। आपको चाहिए कि आप अपने आपको ऐसी विषम परिस्थिति में फँसा लें कि निश्चय से वापसी असंभव हो जाय। आजकल के अधिकाँश असफल व्यक्तियों की कब्रों पर यह लिखना चाहिए—"निरुत्साह के समय में

कच्चा निश्चय कर असफल रहे।" सच है, जिस व्यक्ति ने उत्साह खो दिया है, वह सबसे बड़ा दिवालिया है।

यदि हम अपने उद्देश्य की ओर अपनी पूर्ण शक्तियों को दृढ़-निश्चय तथा अध्यवसाय से लगाते रहें, निराशा से डर कर पीछे न हटें, तो अवश्य सफलता लाभ कर सकते हैं।

जीवन के विविध कार्यों में इतने अधिक व्यक्ति इस लिये असफल होते हैं कि वे वास्तव में विजय प्राप्त नहीं करना चाहते। वे कठोर श्रम से भागते हैं। सख्त मेहनत ही वह मुद्रा है जिससे सफलता खरीदी जा सकती है। वे कठोर संयम, अप्रिय श्रम से दूर भागते हैं। वे अपने क्षुद्र आनन्दों का परित्याग करने को प्रस्तुत नहीं होते; कल के समुन्नत जीवन के लिए आज के छोटे-छोटे आनन्दों की बलि नहीं चढ़ाना चाहते। वे अपने बचे हुए समय के अमूल्य क्षणों का आत्म-निर्माण में सदुपयोग नहीं करना चाहते। वे चाहें तो इन अवशिष्ट क्षणों का सदुपयोग कर भावी जीवन के संघर्ष के लिए अपने आपको तैयार कर सकते हैं।

जब महात्मा गांधी जी ने अछूतोद्धार की समस्या पर विचार किया, तो उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि यह प्रथा नितान्त अनुचित है। उनका अणु-अणु इस घृणित प्रथा के विरुद्ध विद्रोह कर उठा। इस कार्य के लिए उन्होंने अपने क्षणिक आनन्दों को तिलांजलि दे दी। भंगी कालौनी में निवास स्थान बनाया। अन्त में सफलता प्राप्त की। यदि उनका निश्चय इतना बलवान् न होता, तो वे कदापि विजयी न हो पाते।

एक राजा बड़ा मोटा था। मोटापा दूर करने के लिए अनेक चिकित्सक आये, किन्तु सब असफल रहे। कारण, राजा पूरी तरह किसी की भी चिकित्सा न करता था। वे उससे व्यायाम करने, टहलने, हाथ-पांवों से काम लेने के लिए कहते, किन्तु राजा पूरी तरह ये श्रमसाध्य

न कर पाता। फलतः, बीमारी ज्यों की त्यों रही। एक दिन एक चिकित्सक आया और राजा को चंगा करने का आश्वासन दिया। उसने एक कुआँ ऐसा बनवाया, जिसमें एक ओर से पानी आता था, पर पानी को निकालने के लिए एक दूसरी कल लगी हुई थी, जिसे एक खास तरीके से चलाते रहने से वह पानी स्वतः निकलता रहता था। यदि पानी निकालने वाली कल न चलाई जाये, तो पानी बढ़ता रहता था। चिकित्सक ने मोटे राजा को इसमें उतार दिया और पानी छोड़ दिया। फिर बताया कि पानी निकालनेवाली कल घुमाते चलिये। राजा पहले तो सुस्त-सा रहा पर पानी बढ़ कर उसकी कमर तक आ गया। वह चिल्लाया पर किसी ने उस पर ध्यान न दिया। हारकर उसे पानी निकालनेवाली कल को जल्दी चलाना पड़ा तब प्राण बचे। धीरे-धीरे उसे यह ज्ञात हुआ कि जब रक्षा की, या वापसी की गुंजाइश नहीं रहती तब ही मनुष्य की गुप्त कार्य शक्तियाँ तेजी से कार्य करती हैं। अनिवार्य व्यायाम द्वारा उसे स्वास्थ्य लाभ हुआ।

अनिवार्य परिस्थितियों में पड़कर जब अन्यत्र निकलने का मार्ग नहीं रहता, तब ही हमारी गुप्त मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियाँ विकसित होती हैं। जब एक बार हम उनकी आश्चर्यचकित करने वाली शक्तियों से परिचित हो जाते हैं, तो हम स्वयं इच्छाशक्ति की दृढ़ता पर विश्वास करने लगते हैं।

अधूरा निश्चय मनुष्य की बड़ी भारी कमजोरी है। ऐसा व्यक्ति कभी अपनी पूरी शक्ति से कार्य पर नहीं जुट सकता। अधूरे प्रयास सदा असफलता से जुड़े रहते हैं। जो व्यक्ति परिवार, व्यवसाय, दैनिक जीवन के मोर्चों पर अधूरे मन से कार्यों में प्रवृत होते हैं, वे सदा अपने साथ बड़ा अत्याचार किया करते हैं। शक्तियां उनमें हैं, पर उन्हें उनसे काम लेना नहीं आता।

जब आप कार्य हाथ में लें, तो अन्तिम निश्चय दृढ़ता से करें।

महत्त्वाकांक्षा चाहिये

एक अनुभवी विद्वान् लिखते हैं, "यदि आपकी आयु १८ वर्ष से २६-२७ वर्ष की है, तो आप बड़े भाग्यवान् हैं। आपकी यह आयु सोने और हीरों से जुड़ी हुई आयु है। आप के लिए असंभव कुछ भी नहीं है। आपको विश्व का सबसे ऊँचा पद प्राप्त हो सकता है। आप विश्व के सब से बड़े व्यापारी बन सकते हैं; आपका कारखाना दुनिया में सब से बड़ा हो सकता है। अगर आप सचमुच उच्च पद पाने या रोजगार करने की इच्छा रखते हैं, तो वास्तव में यह सब कुछ आसान है। क्या जी जान से आप ऐसा बनना चाहते हैं? प्रत्येक कष्ट सहन करने को प्रस्तुत हैं? सब से आवश्यक बात यह है कि आप ईश्वर पर विश्वास कर सकेंगे और ईश्वर से ऐसा बनने के लिए सहायता आप प्रतिदिन प्रातः सायं माँग सकेंगे? यदि ऐसी बात है, तो जितनी आपकी चेष्टा होगी, जिस मात्रा में आप हृदय से अपनी इष्ट सिद्धि पूर्ण करने की चेष्टा करेंगे उतने ही सफल होंगे। जिस में महत्त्वाकांक्षा है, वह सब सीख लेता है। बस, महत्त्वाकांक्षा चाहिए, ईश्वर से शक्ति लेने की एकाग्रता चाहिए।"

वास्तव में महत्त्वाकांक्षा में ऐसी ही महान् शक्ति है, जो एक साधारण से व्यक्ति को उच्चतम श्रेणी में बैठा सकती है। सच्चा महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति दत्तचित्त हो अपनी मनोकामना की पूर्ति में लगा रहता है। उसकी चेष्टाएँ सम्पूर्ण शक्ति का सहयोग प्राप्त कर आगे

बढ़ती हैं। वह प्रत्येक कष्ट को सहन करने को तैयार रहता है। सफलता भाग्य या प्रतिभा का फल नहीं, वह तो पूरी तैयारी और दृढ़ निश्चय से ही प्राप्त हो सकती है। उद्देश्य की एकाग्रता और महत्त्वाकांक्षा का सही विकास सफलता का रहस्य है।

जो व्यक्ति उच्च स्थिति प्राप्त करने की तीव्र इच्छा नहीं रखता, उससे आप कैसे यह आशा कर सकते हैं कि वह उच्च स्थिति में पहुँच सकेगा?

महत्त्वाकांक्षा को कार्यक्षम बनाइये—

महत्त्वाकांक्षाएँ तभी पूर्ण उपयोगी हो सकेंगी, जब आप उन्हें कार्य रूप में परिणत करने को दृढ़तापूर्वक तैयार हो जाँय। इन्हें दृढ़ता प्रदान करने का उपाय अपने चरित्र को मजबूत बनाना तथा स्वभाव को वश में करना है। इसी की पुष्टि से आगे का कार्य सिद्ध होगा।

मत समझिये कि आप में विशेषता नहीं है। आगे चलने की शक्ति आपके गुप्त अन्तर्बल में है। उस अन्दर पड़ी हुई गुप्त शक्ति को निकालिये। अपनी शक्तियों के सहारे ही आगे का मार्ग तय करना है। आपकी मौलिक प्रतिभा, बुद्धि, निश्चयबल, बातों को दृढ़ता से पकड़ कर अग्रसर होना, आपका चरित्र बनाती हैं। जितनी जल्दी आपको अपनी शक्ति के प्रति विश्वास हो जाय, उत्तम है।

उस व्यक्ति की अवस्था दयनीय है, जो दूसरों के विचार, सम्मति, योजनाओं, तथा कार्य करने के तरीकों का अनुकरण किया करता है। जब आप बात-बात पर दूसरों के पास सलाह के लिए भागते हैं, तब आप स्वयं अपनी मौलिकता की हत्या कर बैठते हैं। आप में दूसरों के ऊपर निर्भर रहने का दुर्गुण आता है। आप आत्म-निर्भर पराधीन, पंगु रह जाते हैं।

पुराने ढंग के तौर-तरीके, रीति-रिवाज का युग समाप्त हो गया। आप स्वयं अपने अन्दर बैठ कर नवनिर्माण करें। कार्य करने के नए

उपाय, नई योजनाएं और अति आधुनिक ढंग काम में लाएं। यह सोचा करें कि अपनी शक्तियों का सब से अच्छा और आश्चर्यजनक उपयोग आप कैसे कर सकते हैं?

महान् व्यक्ति कदापि अनुकरण नहीं करते। एक मौलिक व्यक्ति कभी पुराने ढाँचे में फिट नहीं होता। उसके व्यक्तिगत मौलिक विचार ही उसे ऊँचा उठाने वाले होते हैं, वह जो कुछ बेचता है, जिस प्रकार व्यापार करता है, जो पुस्तक लिखता है, जो चित्र बनाता है, जो व्याख्यान देता है—वह उस नवीन विचारधारा का द्योतक होता है, जो उस के हृदय में उदित होती है। यह नवीनता, यह मौलिकता स्वयं उसके अन्दर होती है।

अमेरिका के जेनरल ग्रान्ट ने वह योजना प्रयुक्त की जिस को अभी तक किसी ने प्रयुक्त न किया था। नेपोलियन ने युद्ध के वे तरीके रद्द कर दिये थे, जो अभी तक काम में लिए जाते थे। शक्ति और महत्त्वाकांक्षा वाले व्यक्ति पुरानी जीर्णशीर्ण परम्पराओं को ठोकर मार कर सदैव नई योजनाएँ निर्माण करते आए हैं। कमजोर डरपोक, व्यसनी, उत्तेजक स्वभाव आज तक नहीं कर पाए हैं।

अमेरिका का इतिहास उठाइए, आप देखेंगे, वहां के सब प्रेसीडेन्ट पुरानी परम्पराओं को ध्वस्त कर नई वस्तु निर्माण करने वाले थे। वाशिंगटन, जैफरसन, जैकशन, लिंकन, रूजवेल्ट—इन सभी ने अपनी शक्ति, मौलिकता और स्वभाव की मौलिकता से नई दिशा पकड़ी; कौन क्या कहता है, इसकी परवाह कभी न की। अपने विषय में दूसरों की व्यर्थ की टीकाटिप्पणी की बात न सुनी। वे उन्हें पागल समझते रहे, अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को समुन्नत करते रहे। इन्होंने सभ्यता को जीवन का नवसन्देश दिया।

जो स्वयं अपने विचारों, योजनाओं और दृष्टिकोण में सच्चा विश्वास लेकर अग्रसर हुआ है वही विजयी होता गया है।

दृढाग्रह की साधना करें

प्रतिकूलता से रक्षा करने वाली अद्‌भुत शक्तियों में एक शक्ति सब से बड़ी है, और वह है दृढाग्रह। जब चारों ओर से आपत्तियों के प्रहार होने लगते हैं तो अनेक निर्बल मन पीठ दिखा भाग खड़े होते हैं। किन्तु इन भागने वालों में एक व्यक्ति ऐसा है जो खड़ा रहता है, जो असफलताओं के प्रसंग में भी चट्टान की तरह दृढ़ता से पाँव जमाए रहता है। यह दृढाग्रही व्यक्ति है। दृढाग्रह द्वारा इसकी आध्यात्मिक शक्तियाँ जागृत हो गई हैं। अतः, यह कठिन से कठिन कार्य को सुसाध्य करने की क्षमता रखता है। दृढ़ाग्रह के धारण करने की असाधारण शक्ति के कारण यह असंभव को संभव और कठिन को सरल कर सकता हैं।

अपने मन का निरीक्षण करो? देखो, तुम्हारा आग्रह दृढ़ है या रूई की तरह कोमल। तुम किस प्रकार की मानसिक प्रवृत्ति में अपना अधिकांश समय व्यतीत करते हो? दिन-रात किस उधेड़ बुन में व्यग्र रहते हो? तुम्हारा वर्तमान किन किन विचारों का बना हुआ है? क्या तुम सरिता के प्रवाह में लुढकते हुए पत्थर की तरह कभी इधर, कभी उधर भटकते फिरते हो या शक्ति सम्पन्न पर्वत सदृश संसार के तूफानों में भी अचल खड़े रहते हो?

भाग्यवान् कौन है? ईश्वर किसकी सहायता करता है? विजय-श्री किसे प्राप्त होती है? इन सब प्रश्नों को गहराई में पैठ कर सोचो।

भाग्य का निर्माण कोई बाह्य शक्ति नहीं करती—सहायता बाहर वाले तत्त्वों में अति न्यून है। विजय-श्री यों ही प्राप्त नहीं हो जाती, प्रत्युत इन सबके पृष्ठ भाग में दृढाग्रह का गुप्त बल अन्तर्निहित है। "देहं पातयामि अर्थं वा साधयामि" से धारण करने वाला अत्यल्प समय में ही उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जाता है। जो कार्य दृढाग्रह-पूर्वक प्रारंभ किया जाता है वह उसी अद्भुत बल के द्वारा अवश्यमेव सिद्ध होता है।

अमुक मनुष्य हमसे अनुचित लाभ उठाना चाहता है, अब अमुक कठिनाई हमें क्षतविक्षत करना चाहती है, इस विषय प्रहेलिका में पड़ कर हमारे मस्तिष्क की शक्ति पंगु हो गई है। युक्ति एवं तर्क ने अपना कार्य त्याग दिया है—यह विचार-धारा उन चंचल व्यक्तियों की है जो स्वयं तो कुछ करना नहीं चाहते, केवल दूसरे में भाँति भाँति के दोष-दर्शन में तत्पर रहते हैं। बुद्धि शक्ति तभी निष्फल होती है जब मनुष्य की स्थिरता नष्ट हो जाती है। पराजय का तभी सामना करना पड़ता है जब मन चंचल रहता है और एकाग्र नहीं हो पाता। मानव विफलताओं का इतिहास मानसिक अस्थिरता, चंचलता, एवं इधर उधर की काल्पनिक चिंताओं का इतिहास है।

तुम्हारे मन में आज एक कल्याणकारी विचार उदित होता है। तुम्हें वह परम हितैषी प्रतीत होता है। तुम सोचते हो, लाओ इस कार्य को प्रारंभ कर दें। तत्क्षण तुम संकल्प कर उसे प्रारंभ कर देते हो। कुछ काल तक उसमें संलग्न भी रहते हो। किन्तु शोक! महा शोक!! जहां तनिक कठिनाई प्रतीत होने लगती है तुम उसे छोड़ बैठते हो। दृढाग्रह के अभाव के कारण तुम तनिक सी प्रतिकूलता से पराजित हो जाते हो। इसी प्रकार बारंबार करने से तुम्हारे संकल्प ढीले ढाले निर्जीव हो जाते हैं।

जिस प्रकार भोजन द्वारा शरीर पुष्ट होता है उसी प्रकार अपने साधन पर दृढ रहने से दृढाग्रह की अद्भुत शक्ति का संचय होता है। दृढाग्रह प्राप्त करना कठिन अवश्य है। किन्तु एक बार प्राप्त कर लेने के उपरान्त यह बल सदा तुम्हारे साथ रह सकता है। दृढाग्रह ही सफलता का मूल मंत्र है। इस शक्ति के अभाव में मनुष्य अपना उद्देश्य कदापि पूर्ण नहीं कर सकता। इसके साथ जीवन की इच्छित वस्तुएं प्राप्त की जा सकती हैं।

दृढाग्रह की आधारशिला—आत्म-संकेत—

सर्व प्रथम निज लक्ष्य को स्थिर करो। कर्त्तव्य की दिशा निश्चित कर लेना भी एक कठिन कार्य है। स्मरण रहे, जो कुछ तुम निश्चय करोगे वह छोड़ना नहीं पडेगा। एक बार खूब विचार कर अपने जीवन का लक्ष्य स्थिर कर लो, फिर सहस्र प्रतिकूलता आने पर भी आग्रह पूर्वक डटे रहो। मन में दृढता की भावना का संचार करो। श्रद्धापूर्वक मन में कहो कि "मैं अद्भुत दृढता सम्पन्न व्यक्ति हूं। बार बार अपने निश्चय को ढीला नहीं करता हूं। मेरी बुद्धिशक्ति कभी निष्फल नहीं जाती; कार्यकारिणी मस्तिष्क की शक्ति शिथिल नहीं होती। मैं मन पर पूर्ण अंकुश रखता हूँ और निज इच्छानुकूल केवल इच्छित विषय में ही लगता हूं। मैं तितली की तरह एक पुष्प से द्वितीय पुष्प पर बाहर के रंगों से लुब्ध होकर मारा मारा नहीं फिरता हूं, प्रत्युत पर्वत सदृश एकनिष्ठ हूं, दृढाग्रही हूं, व्यर्थ की इच्छाओं का दास होकर मैं चारों दिशाओं में भागता नहीं फिरता हूँ। मेरा मन एकाग्र है, अपने लक्ष्य पर लगा रहता है। जिस भांति बड़ी बड़ी पर्वत शिलाएं पानी के प्रवाह से विचलित नहीं होतीं उसी प्रकार मैं संसार के प्रवाह से विचलित नहीं होता। मेरी इच्छाशक्ति एकाग्र है, वह केवल इच्छित मार्ग की ओर ही उन्मुख हो सकती है। मनोविकार मुझे कर्त्तव्य मार्ग से च्युत कदापि नहीं कर सकते क्योंकि मेरा आग्रह तो दृढ़ है।"

इस प्रकार की पुष्ट भावना में रमण करने से दृढ़ता का संचार होगा। हम जैसी विचार-मुद्रा में निवास करते हैं वैसे ही हो जाते हैं। विजयश्री से विभूषित होने के लिए दृढता की भावनाएं जितनी ही संतुलित होंगी उतना ही लाभ होगा।

दृढाग्रह भी क्रमशः बढ़ता है। कोई ऐसा कार्य लो जो सरल हो। मान लो, तुम सोचते हो कि हम नित्य रात्रि में सोने से पूर्व दस मिनट अमुक पुस्तक पढ़ेंगे। तुम्हारा मन कहता है कि यह अत्यन्त कल्याण-कारी तत्व है। जब तुमने निश्चय कर लिया तो नित्य उसी समय पर उस पुस्तक को खोल लो। पूरे दस मिनट के लिए चाहे और कुछ भी कार्य क्यों न हो, छोड दो। इसी प्रकार दो चार महीने तक रहो। अन्त में तुम्हारा आग्रह इतना मजबूत हो जायगा कि तुम इस कार्य-क्रम को स्थगित न कर सकोगे। जहां किसी दिन भूल हुई कि कोई मन में कहेगा—"आज तुमने एक परम आवश्यक कार्य नहीं किया। तुमने यह ठीक नहीं किया। तुम्हारा यह काम वास्तव में बुरा हुआ। अब भी उठो, पढ लो। अपने प्रण को क्यों छोडते हो"। जब अन्तर्तम से ऐसी ध्वनि होने लगे तो समझना चाहिए, कि दृढाग्रह की वृद्धि हो रही है।

जब तुम छोटे २ कार्यों में दृढता लाभ करने लगो, तो कठिन कार्य भी हाथ में ले सकते हो। क्रमशः, कार्यों को बढाना चाहिए। जिसका आग्रह जितना ही न्यून हो वह अपनी शक्त्यनुसार उतना ही छोटा कार्य प्रारंभ में ले सकता है। साधक को सब कुछ देखकर निश्चय करना उचित है, क्योंकि एक बार निश्चय करने के पश्चात् पुनः उसे ढीला करने से रही सही दृढता भी शिथिलता को प्राप्त होती है। मुख्य बात यह है कि एक बार निश्चय करके विघ्नों एवं प्रतिकूलताओं से हटना नहीं चाहिए। एक बार हटे कि वर्षों का परिश्रम व्यर्थ गया।

कुछ भी हो पर निज आग्रह को अवश्य धारण किए रहो। फल की

इतनी चिन्ता न करो। आग्रह को त्याग देने वाला व्यक्ति प्रयत्न से विमुख रहता है और प्रयत्न तभी सफल हो सकता है जब उसमें दृढाग्रह हो। दृढाग्रह के समक्ष कुछ भी असंभव नहीं। इससे मनुष्य की सुप्त आध्यात्मिक शक्तिएँ जागृत होती हैं। जिन व्यक्तियों के संकल्प दृढता लिए हुए होते हैं वे अलौकिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं शारीरिक शौर्य प्रदर्शन कर जाते हैं।

सद्गुरु की मूर्ति का ध्यान—

दृढाग्रह की साधना का द्वितीय सोपान है सद्गुरु की मूर्ति का ध्यान। योग शास्त्र का एक अखंडनीय सिद्धान्त है कि ध्यान करने वाला जिसका ध्यान करता है उसी के सदृश हो जाता है। जिसका मन में दृढतापूर्वक ध्यान किया जाता है, जब उसके उच्च से उच्च स्वरूप की कल्पना की जाती है, तभी ध्यानकर्त्ता में उत्कृष्ट गुणों का संचय होता है। तुम्हारा जैसा आदर्श है वैसे ही तुम स्वयं बन जाओगे। तुमने दृढता की साधना का निश्चय किया है, अतएव अपने मन में मूर्ति भी उन्हीं परम दृढ व्यक्तियों को स्थापित करो जिनकी दृढता जगत्-प्रसिद्ध है।

जब तुम अपने गुरु की विशालता पर मानसिक नेत्र केन्द्रित करते हो तो उसकी काल्पनिक मूर्ति में अलौकिक भाव प्रकट होने लगते हैं। परन्तु शोक! हमारे हृदय में अपने सद्गुरु की विशालता का हजारवां भाग भी नहीं आ पाता और इस कारण उसकी वृत्ति में कोई अलौकिक फल प्रकट नहीं हो सकता। वह सामान्य सांसारिक वस्तुओं के समान ही हो जाती है। इससे उस मूर्ति का चिंतन भी अन्य सामान्य वस्तुओं के चिंतन के समान अनुत्पादक हो जाता है। अतः, ध्याता में ध्यान करने की प्रतिमा के स्वरूप का यथार्थ कल्पना अत्यन्त आवश्यक तत्त्व है। उत्कृष्ट कल्पना में वृत्ति को आरूढ करके पूर्वोक्त क्रिया करनी चाहिए।

आत्मश्रद्धा तुम्हारी पूँजी है—

पोषक शक्ति के संचय में तृतीय तत्त्व आत्मश्रद्धा की परिपुष्टि है। पहले तो जितना सामर्थ्य—भंडार हमें प्राप्त है, उसकी रक्षा करना उचित है। प्रत्येक मनुष्य में अपनी शक्तियों के प्रति विश्वास की मात्रा तो विद्यमान रहती है परन्तु अधिकांश व्यक्ति इस शक्ति का बड़ा परिणाम निकम्मी क्रियाओं में यों ही नष्ट कर देते हैं। क्रोध, शोक, भय, चिंता इत्यादि आकस्मिक विकार आत्मश्रद्धा का क्षय करते हैं। इन सभी प्रकार के क्षयों से बच कर मनुष्य को अपने आप में भरोसा करना उचित है। जो कुछ सोचो अपनी भलाई की बात सोचो। विरोधी अवस्था में विचरण करने से मनुष्य उन्नत अवस्था में कदापि नहीं पहुँच सकता।

अपने आप में नेपोलियन की तरह विश्वास और श्रद्धा रखना सीखो। सदा सर्वदा आन्तरिक मत की भावनाओं के प्रति लक्ष्य किये रहो और उन सब में अखंड श्रद्धा एवं विश्वास रखो। किसी विशेष मर्यादा तक केवल ऊपरी श्रद्धा ही मत रक्खो प्रत्युत आन्तरिक भित्ति में विश्वास की अखंड छाप जमा दो, फिर आत्मश्रद्धा के अद्भुत एवं आश्चर्य-चकित कर देने वाले उत्तम फलों को देखो।

हे अक्षय आत्मा ! तुम अपने वास्तविक अविनाशी स्वरूप को प्रकट करो। तुम में आसक्तता नहीं, चंचलता नहीं, हीनता नहीं, तुम इन्द्र के समान परम शक्तिशाली आत्मा हो, महान् हो, परमात्मा के स्वरूप हो, सफलता के स्वरूप हो, केवल अपनी आत्मश्रद्धा के भंडार को खोल लो। उस में से शक्ति का अविरल प्रवाह प्रवाहित हो जायगा।

सदाग्रह का तर्क—

आत्म-विकास की एक रीति मानसिक तर्क भी है। इसे फुसलाना भी

कहते हैं। इस मानसिक क्रिया में अनेक तर्क-वितर्क द्वारा कायदे कानून से मन को किसी विशिष्ट दिशा में झुकाया जाता है। आत्म-संकेत की विधिका संकेत ऊपर किया जा चुका है। यहां पर मानसिक तर्क की रीति का उल्लेख है।

मन में गहरे उतर जाइये। फिर इस पर चिंतन कीजिए—मुझे प्रतीत होगया है कि दृढाग्रह के ही अस्तित्व से प्राचीन पूर्व पुरुषों ने संसार को चकित करने वाले आश्चर्यजनक कार्य सम्पादित किए। जिन में दृढाग्रह का अभाव होता है वे साधारण से विघ्न अथवा प्रतिकूलता के आते ही हार खा जाते हैं किन्तु मैं तो दृढाग्रह की महती शक्ति से अब पूर्ण परिचित हो गया हूं। मैं जानता हूं कि मुझे अपने रास्ते पर दृढता पूर्वक जमे रहना चाहिये। जब मैं दृढाग्रही हूं तो अवश्य कार्य-सिद्धि कर सकूंगा क्योंकि दृढाग्रह ही कार्यसिद्धि का मूल मंत्र है। बिना दृढाग्रह के आजतक कोई विजयी नहीं हुआ। और जहां यह विद्यमान होता है वहां इच्छित वस्तुएं प्राप्त की जा सकती हैं। व्यवहार एवं परमार्थ दोनों का ही सिद्धिकर्त्ता दृढाग्रह है। जिन दुर्बल व्यक्तियों में मजबूती नहीं होती, वे उभय लोकों से भ्रष्ट हो जाते हैं और जिनमें इनका सद्भाव होता है वे उभय सिद्धि करके अनन्त सुख का अनुभव करते हैं। मैं भली भांति जान गया हूं कि चंचलता मानवता का प्रधान शत्रु है। दृढाग्रह के द्वारा ही मनुष्य निज संयोग एवं वतावरण को अनुकूल बना कर वीर पुरुष की तरह संसार रूपी रणसंग्राम में विजय लाभ करते हैं। ऐसे ही कर्मयोगी वास्तव में सच्ची मानवता के प्रतीक हैं। आग्रह तथा निश्चय-हीन मनुष्य, मनुष्य जैसे महाशक्तिशाली संबोधन का अधिकारी नहीं है।

"मैं समझदार व्यक्ति हूँ। मेरा मन दीन, हीन, पतित, नीच कदापि नहीं है। दृढाग्रह ने मुझे मेरी महानता का संदेश दिया है। मैं महान् पिता का महान् पुत्र हूँ—महान् आत्मा हूँ—सत्-चित्-आनन्द हूँ। फिर भला अपने लक्ष्य से क्यों कर हट सकता हूँ। नहीं नहीं, मैं

कदापि अपने प्रण से विचलित न हूँगा। यह तो कायर, बुजदिल पतित व्यक्ति की आदत है। मैं तो दृढता की साक्षात् मूर्ति हूं। मेरी शक्ति इन्द्रवज्रों से कहीं अधिक है।"

अनेक प्रकार की युक्तियां देकर मनकी प्रवृत्ति चंचलता से मोड़ दो। उसके सामने ऐसी ऐसी दलीलें पेश करो कि वह इधर उधर न भागे। मन बड़ा चंचल है, नटखट और शैतान है। जब तक तुम उसे खूब न समझाओगे तब तक सदाग्रह पर न आएगा। जब जब मन व्यग्र हो उठे तुम कर्तव्यच्युत होने लगो, या ऐसा प्रतीत होने लगे, कि अब गिरे अब गिरे, तुम तुरन्त मन से कुश्ती लडने लगो। दृढाग्रह के पक्ष में अनेक युक्तिपूर्ण तर्क प्रस्तुत करो। उसे बराबर समझाओ। अपनी विद्वत्ता उसे एक स्थान पर एकाग्र करने में व्यय करो।

दृढाग्रह धारण करने वाले के मन बुद्धि आदि सब साधन एक मात्र कर्तव्य पर केन्द्रीभूत रहते हैं। यही कारण है कि जहां अन्य व्यक्ति की शक्तिएं विच्छृंखल रहती हैं, अनेक स्थानों पर बटी रहती हैं वहां दृढाग्रही की सब ताकत केवल एक दिशा में लगी रहती है। दृढतापूर्वक हम जो करते, सुनते, समझते हैं, कालान्तर में वही हो जाते हैं। दृढता शक्ति है; सच्चा आग्रह कार्यसिद्धि के लिए सच्चा बल है। संसार के इतिहास में आज तक जो उत्कृष्ट कार्य हुए हैं उनका मूल दृढाग्रह था।

दृढाग्रह की असीम शक्ति का अनुमान तभी हो सकता है जब मनुष्य उसकी सम्यक् साधना करे। दृढाग्रह के अद्भुत सामर्थ्य का अनुभव प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है। इसी एक शक्ति में क्षुद्र से क्षुद्र एवं विषम से विषम कार्य-सिद्धि की शक्ति वर्तमान है। शीघ्र से शीघ्र अपना जीवन-पथ निश्चय कर लीजिए, और फिर तूफान, आँधी, विरोध किसी की भी चिंता न कर दृढतापूर्वक आगे बढते रहिए। स्मरण रखिए, जो व्यक्ति अपने निश्चय पर चट्टान की तरह दृढ रहते हैं उनसे कोई भी अडने का साहस नहीं करता और सब उनकी बात मान लेते हैं।

आत्म-प्रतिष्ठा जागृत करें!

मनुष्य के हृदय में जिन-जिन विचारों, भावनाओं का स्फुरण होता है वे ही क्रमशः उसका निर्माण करती हैं। हमारा एक-एक विचार, एक-एक आकांक्षा, एक-एक कल्पना हमारे व्यक्तित्व को परिपुष्ट करती है। जैसा हम अपने आपको मानेंगे वैसा ही चित्र हमारे अन्तःकरण में स्थिर होता है; फिर मनोभाव हमारी नित्यप्रति की क्रियाओं में प्रकट होकर संसार के समक्ष प्रकट होता है। संसार में सर्वोत्कृष्ट महापुरुष अपनी योग्यता के विषय में जो कुछ अपने आपको मानते थे उसी उत्कृष्ट भावना के अनुसार उन्होंने संसार में विजय प्राप्त की। हमारे निश्चय एवं आदर्श ही हमें ऊँचा और नीचा करते हैं।

यदि हमारे विचार निर्बल होंगे तो निश्चय ही हम निर्बल बनेंगे। हमारा आत्मबल भी अत्यंत न्यून होगा। हमारी शक्ति भी वैसा ही कार्य करेगी, और क्रमशः वैसी हमारी वृत्ति बनेगी। दुर्बल व्यक्ति की दुर्बलता उसके शरीर में नहीं, उसके विचार में होती है। पहले वह दुर्बल विचारों में डूबता है तब वह शिथिल बनता है। फिर उसके चारों ओर उसी प्रकार का निर्बल वातावरण उपस्थित होता है। वह स्वयं विचारों की क्षुद्रता के कारण दुःखद अवस्था को प्राप्त होता है।

तनिक उस व्यक्ति के विषय में विचार करो जो स्वयं अपने विषय

में तुच्छ विचार रखता है। अपने आप अपनी बेकदरी करता है। स्वयं-अपने विषय में हीनत्व की भावना (Inferiority complex) रखने से वह स्वयं मानों ईश्वर की निंदा करता है। ऐसा व्यक्ति स्वयं अपने हाथ से अपना भाग्य फोड़ता है। संसार भर की चिंताओं, कठिनाइयों एवं विघ्न-बाधाओं को आमंत्रित करता है। ऐसा व्यक्ति संसार में कभी कुछ नहीं कर सकता। वह सदैव प्रतिकूलताओं का शिकार बना रहता है।

जो व्यक्ति अपने जीवन के कष्टप्रद, कटु, त्रुटिपूर्ण स्थलों को लिए सदा असत् चिंतन में विचरण करते हैं वे अपने दोषों की अभिवृद्धि करते हैं। कुछ मनुष्यों का ऐसा विश्वास जम जाता है कि अमुक दोष, अमुक त्रुटि, अमुक न्यूनता हमारे पूर्वजों से आई है। वे उस दोष के वश में पड़कर उसकी जड़ जमा लिया करते हैं। यह उनका स्वयं का मनोजनित रोग है। इसके जिम्मेदार वे स्वयं ही हैं। कुत्सित विचार द्वारा, धीरे-धीरे उन्होंने स्वयं उसकी उत्पत्ति की है। अपने रोग को बढ़ाने वाले वे स्वयं अपने ही शत्रु हैं।

जैसा तुच्छ, निंदित, निर्बल या घृणित तुम अपने आपको समझते हो वैसा ही तुम्हारी सूरत-शक्ल, जीवन, वातावरण, चरित्र का निर्माण होता है वैसे ही व्यक्ति तुम्हारे इर्द-गिर्द आकर्षित होकर आते हैं। तुम्हारे विचारों के अनुसार ही अन्य व्यक्ति तुम से ईर्षा, द्रोह, द्वेष इत्यादि करते हैं। अपना जैसा चित्र तुमने अन्तःकरण में निर्माण कर रखा है वही तुम्हारा यथार्थ रूप है। यदि तुम अपने आपको संसार में निम्न पाते हो, तो इसके उत्तरदायी तुम स्वयं ही हो। बाह्य शक्तियां तुम्हारे ऊपर इतना प्रभाव नहीं डालतीं जितने तुम्हारे स्वयं के विचार। अपने चारों ओर जो वातावरण तुम देखते हो वह तुम्हारी

स्वयं की ही प्रतिच्छाया है। दोषी हम स्वयं ही हैं, बाह्य जगत् नहीं।

चुपचाप अपने विचारों का निरीक्षण करो। सोचो कि तुम्हारे हृदय-सरोवर में किस-किस प्रकार के विचार उदित होते हैं? तुम अपना अधिक समय कैसे विचारों के सम्पर्क में व्यतीत करते हो? मालूम करो कि तुम दूसरों के विचारों के अनुसार तो नहीं चलते?

अपना भला चाहते हो तो विचारों में परिवर्तन करो। सफलता प्राप्त करने के लिए विचार-परिवर्तन आवश्यक है। मानसिक दृष्टि से अपने हितैषी बनो, अर्थात् अपने विषय में उत्कृष्ट विचार दृढ़ करो। दूसरों के दास न बनो। जितना दूसरों का अपमान करने में पाप है उतना ही अपना अपमान करने में है। आत्मबन्धुओ! तुम परमात्मस्वरूप हो, महान् हो, उन्नति के लिए बने हो। तुम स्वाधीन हो, स्वतंत्र हो, बंधन-रहित हो। अपनी वृत्तियां अंतर्मुख करो। अंतरात्माकी शक्ति ही तुम्हारी सर्वोच्च शक्ति है। उसे जागृत करो।

आत्म-विकास का प्रथम सोपान

सत्य की खोज के प्रारंभ में अनेक जिज्ञासु स्वीकृतियों का उचित प्रयोग नहीं कर पाते। बाह्य जगत् की घटनाओं को देख कर वे उन्हीं के अनुसार स्वयं बनते जाते हैं। यह नहीं कि अपनी आन्तरिक मनोदशा के अनुरूप वाह्य वातावरण को बदलते जांय।

दृढ़निश्चयी साधक वही है, जो अपनी मनोदशा के अनुकूल क्रमशः वाह्य वातावरण को बदलता जाता है। उसकी इच्छाएं तथा अभिलाषाएं फैल कर सुन्दर एवं मनोरम सृष्टि करती हैं। वह जैसा सोचता है, परिस्थितियां वैसी ही बनती जाती हैं। वह जिस वस्तु, तत्त्व, या सत्य का अनुभव या प्राप्ति करना चाहता है, उसे अपनी आन्तरिक सृष्टि में स्वीकार करता है, जिसे नहीं चाहता, उसे अस्वीकार करता है। इन स्वीकृतियों (*Affirmations*) और अस्वीकृतियों (*Denials*) द्वारा वह क्रमशः आध्यात्म पथ पर आगे बढ़ता है।

मुझे स्वयं स्मरण है कि किस प्रकार मैंने कौन २ सी स्वीकृति से कार्य लिया था। मेरा शरीर ऐसा रुग्ण था कि पुनः स्वस्थ होने की बहुत कम आशा रह गई थी। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा था, जैसे ईश्वर भी मुझे विस्मृत कर रहे हों। मेरी प्रार्थना भी छूट सी गई थी।

एक दिन अचानक मुझे स्वीकृति के महान् सत्य का ज्ञान हुआ। हम जिस तत्त्व को प्राप्त करना चाहते हैं, यदि उसे मिला हुआ समझ

कर चलें, तो मन तथा शरीर में अद्भुत शक्ति का संचार होता है। मेरी प्रथम स्वीकृति यह थी—

"मैं आन्तरिक प्रसन्नता और दैवी आह्लाद से परिपूर्ण हूँ। मेरा निकट सम्बन्ध दैवी स्वास्थ्य, दैवी तत्त्व, दैवी जीवन से है। परमेश्वर का स्वास्थ्यप्रद, कल्याणकारी अकलुष, सजीवता प्रदान करने वाला तत्त्व मेरे रोम रोम में प्रवाहित हो रहा है। मेरा शरीर, मन, आत्मा, कण-कण दैवी जीवन से ओत-प्रोत हो रहा है।"

एक अध्यात्मवेत्ता का विचार है—"जब तक तुम्हें कोई भी स्वीकृति पूर्ण रूप से अभिभूत न कर ले, तुम उसे पूरी तौर से हृदयंगम न कर लो, तब तक उसी पर विचार करो, उस पर मनन करो, उसी में निरन्तर रमण करते रहो।"

यही उस दिन हुआ। मैं लगातार इन्हीं शब्दों पर विचार करता रहा। मैंने उन्हें याद करने की चेष्टा न की, बल्कि इन शब्दों से अपने आन्तरिक जगत् का रोम-रोम रंग लिया, मस्तिष्क ने उन्हें दृढता से जकड़ लिया। मैं इन शब्दों को गाता रहा। "मैं दैवी प्रसन्नता से परिपूर्ण हूँ। मैं स्वस्थ हूं, दैवी कल्याणकारी तत्त्व तमाम रोग-शोक मुझ में से निकाल रहा है।"—यह परमोषधि निरन्तर मेरे रोगों को दूर करती रही। सत्य मुझे उत्तमोत्तम दवाई मिली।

"मैं दैवी स्वास्थ्य, प्रसन्नता, आह्लाद से युक्त हूं।"—यह बात पुनः पुनः दोहराना, बार बार उन्हें विविध रूप में उच्चारण करना हास्यास्पद लगता था। प्रारंभ में मन ने इन्हें स्वीकार न किया। पर बार-बार उन्हीं में रमण करने से एक दिन मुझे आन्तरिक आह्लाद का आभास मिला। मैं धीरे-धीरे स्वस्थ और प्रसन्न होने लगा। मैंने कुछ और स्वीकृतियां इस प्रकार बनाईं—

"मैं आनन्द हूं, सदैव आनन्द में ही रमण करता हूं"

"मैं स्वस्थ हूं सदैव स्वास्थ्य, सुख, प्रसन्नता से ही मेरा सम्बन्ध है।"

"मैं प्रेम हूं, समस्त जीव-जन्तु प्राणिमात्र से मैं प्रेम करता हूँ। मेरा कोई शत्रु नहीं। सभी मित्र एवं हितैषी हैं।"

मैं पुनः पुनः इन्हीं संकेतों में मग्न रहने लगा। मेरे आन्तरिक मन ने उन्हें ग्रहण कर लिया। मैंने वैद्य का आश्रय छोड़ा। अधिकाधिक दृढ विश्वास से उक्त स्वीकृति को पकड़ता गया। उस विश्वास में कैसा अद्भुत आनन्द था। मैं परमेश्वर से प्रार्थना करता। मेरी प्रार्थना में स्वीकृतियाँ होतीं। मेरा शरीर निर्विकार हो गया।

यह जीवन-परिवर्तन का एक पहलू था। दूसरा पहलू 'अस्वीकृतियां' था। जिन चीजों, अवस्थाओं, परिस्थितियों को मैं नहीं चाहता था, उन्हें मैंने, मेरे अन्तर ने, अस्वीकार किया। मैंने दृढता से कहा—

'मैं बीमार नहीं हूं। मुझ में किसी प्रकार की कमजोरी नहीं। मेरे शरीर में कोई भी विकार नहीं ठहर सकता। मुझ में ज़रा भी निर्बलता नहीं है।'

प्रारंभ में अन्तर्मन ने हीलाहवाला किया, किन्तु दीर्घकालीन अभ्यास से मनोदशा बदलने लगी। ठीक अवस्था में विकास होते-होते अब यह दशा है कि अभद्र बातें मन स्वीकार ही नहीं करता। अपने विषय में कोई भी निर्बलता की बात मैं स्वीकार नहीं करता। मैं अपने विषय में शुभ ही स्वीकृत करता हूँ। अशुभ को दृढता से अस्वीकृत करता हूं। अपने व्यक्तित्व के विषय में कोई भी अभद्र बात मुझे रुचिकर नहीं। सत्य की अन्वेषणा में यह मेरा प्रथम अनुभव था। अब मुझे ज्ञात होता है कि अपने व्यक्तित्व के विषय में दूसरे व्यक्तियों की अभद्र स्वीकृतियां कैसा अन्धेर करती हैं।

अनेक स्वार्थी व्यक्ति कमजोरी के संकेत दुर्बल मन में प्रविष्ट करा देते हैं जिनसे मनुष्य हीनत्व की भावना का शिकार होकर अपने विषय में ऊलजलूल बातें मान बैठता है और अपना सत्यानाश कर लेता है।

हम उन्हीं बातों या संकेतों को स्वीकार करें, जो हमारे लाभ की हैं। अहितकर संकेतों को अस्वीकार कर देने में ही भला है।

विचार-पूजा

एक बार एक सार्वजनिक पाठशाला में जाना हुआ। वहाँ कक्षाओं की दीवारों पर आदर्श वाक्य लिखे हुए देखे। कई विद्यार्थियों से उनके विषय में बातचीत की, तो ज्ञात हुआ कि उन वाक्यों का, उन आदर्शों का एक हल्का एवं भारी प्रभाव तो बालकों पर जरूर पड़ा है, किन्तु वह उनके अन्तर्जगत् तथा मानसिक संस्थान का अंग न बन सका। इसी प्रकार अनेक आदर्शवादी धर्मरत साधकों के जीवन में देखा जाता है कि वे उत्तमोत्तम धर्मग्रन्थ अपने पास रखते हैं, ऊँची किस्म की नारेबाजी लगाते हैं, किन्तु उनके चरित्र में उन धर्मग्रन्थों का केवल एक हल्का तथा ऊपरी प्रभाव ही दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार के ऊपरी एवं जीवन से रहित "विचार-पूजा" उन में आती है।

विचार-पूजा अन्य आदतों के समान ही एक आदत मात्र है। इसे हम बुरी आदतों में तो नहीं मान सकते किन्तु ऐसा व्यक्ति अपने जीवन में कुछ अधिक उन्नति नहीं कर पाता। उसकी प्रवृत्ति तो उत्तम और दिव्य कार्यों की ओर है, वह चाहता है कि उन उपदेशों को जीवन में उतारे किन्तु अन्य चीजों के संग्रह की भांति वह कुछ अच्छे ग्रन्थ, आदर्श वाक्य ही संग्रह कर पाता है। स्थायी रूप से उसके हाथ कुछ भी नहीं लगता। वह यह नहीं समझ पाता कि संग्रह करने की वृत्ति पाना एक बात है, उन उच्चादर्शों को जीवन में उतार कर स्थायी लाभ करना दूसरी बात।

विचार-पूजावाले व्यक्ति के मानसिक संस्थान का निरीक्षण कीजिए उस में सद्प्रवृत्ति है, किन्तु उन उद्देश्यों में प्रेरणा नहीं है। निष्ठा एवं आत्मविश्वास की भारी न्यूनता है। वह प्रशस्त पथ का अनुगामी तो बनना चाहता है किन्तु जीवन में उस आदर्श को पा लेने की साधना नहीं करना चाहता। वह केवल उन विचारों, आदर्शों को तोते की भाँति रट लेना चाहता है, आत्मविश्वास को उन से सम्बन्धित नहीं करना चाहता। उस में आत्मबल नहीं। यदि है, तो बहुत कम। जिसका निश्चय दृढ हो, वही आत्म-बली है। उसका निश्चय संसार को डिगा सकता है। विचार-पूजक का निश्चय क्षीण होता है। उस में इतनी सामर्थ्य नहीं होती कि ज़िन्दगी में आदर्श-पालन के लिए साधना कर सके।

बुद्धिमान् व्यक्ति अपने जीवन को थोड़े से सरल नियम के अनुसार बनाता है। वह बहुत समझ बूझ के पश्चात् आदर्शों का निर्णय करता है। एक बार निर्णय करने के पश्चात् वह साधनों से डिगता नहीं, वादविवाद नहीं करता प्रत्युत साधना में प्रवृत्त होता है। ऐसे व्यक्ति के विचार, संकल्प, एवं कार्य सामयिक होते हैं। उसे किसी बात में विरोध नहीं जान पड़ता। समृद्धि एवं ज्ञान का अक्षय भंडार वह अपनी शक्तियों में पा लेता है।

प्रायः अध्यापक, उपदेशक, लेखक, नेता, कार्यकर्त्ता, सार्वजनिक शिक्षा संस्थाओं के सर्वेसर्वा संस्थाओं के मूल निहित विचारों का प्रचार न कर, मिथ्या भावनाओं के जाल में लोगों को फंसाते हैं। उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि जीवन में उतरे हुए आदर्श वाक्य ही प्रेरणा का काम दे सकेंगे अन्यथा वे मिथ्या प्रदर्शनमात्र हो कर हास्यास्पद होंगे।

असीम सिद्धियों और शक्तियों का रहस्य

ऐथेन्स-निवासी 'सुकरात' ग्रीस के सब से बड़े तत्त्वज्ञानी और महान् विचारक थे। उन्होंने अपना समग्र जीवन नवयुवकों को नीति, विवेक और सद् आचरण सम्बन्धी शिक्षा देने तथा सद्गुणों से प्रेम करने में व्यतीत किया। उनका जीवन-सिद्धान्त था, "सद्गुण ज्ञान है", 'दुर्गुण अज्ञान या अन्धकार है।"

एक दिन ऐथेन्स में एक व्यक्ति आया जो यह दावा करता था कि मैं मनुष्य के चेहरे को देख कर किसी का भी चरित्र तथा उसकी आदतों; स्वभाव आदि को बता सकता हूँ। उसकी चतुराई की परीक्षा लेने के लिए सुकरात का उपदेश सुनने वालों तथा उनके अनुयायियों ने उस व्यक्ति को बुलाया तथा सुकरात की ओर संकेत करके पूछा, "अच्छा बतलाइये इन वृद्ध-महाशय का चरित्र कैसा है?"

'सुकरात' अत्यन्त कुरूप थे। चेहरा कुरूप, काला भद्दा रंग, बेढंगा शरीर, बुरी तरह फैली हुई मूंछ-दाढ़ी। जीवन की सन्ध्या थी। बुढ़ापा उस दार्शनिक का जैसे अट्टहास कर रहा था।

सुकरात को देख कर वह नवागन्तुक बोला, 'यह वृद्ध' दुर्गुणों से युक्त, सड़े दिमाग़ तथा चिढ़-चिड़े स्वभाव का व्यक्ति है। इस में क्रोध और उत्तेजना की मात्रा अधिक है। यह बात-बात पर लड़ने-मरने को तैयार रहता है। इसे अपनी इच्छाओं पर काबू नहीं।"

यह निर्णय सुन कर सुकरात के अनुयायी एक बार तो हँस पड़े, क्योंकि वे अपने गुरु के सद्गुणों एवं आश्चर्यमयी विभूतियों से पूर्ण परिचित थे।

मामला सुकरात के कानों तक पहुँचा। वे कुछ मुसकरा उठे और और फिर बोले, वास्तव में यह आगन्तुक ग़लती नहीं कर रहा है। बचपन में मेरे स्वभाव का झुकाव खराबी की ओर ही था। मैं बात-बात पर झगड़ता था; लोगों को परेशान करता था; अनेक बार उत्तेजना और क्रोध में उन्मत्त हो उठता था, किन्तु इन आदतों की निस्सारता मालूम होने से चिरकालीन अभ्यास से मैंने अपनी कुप्रवृत्तियों और बुरी आदतों को दबा कर अपने विवेक के वश में कर लिया है। धीरे-धीरे सद्गुणों और सत्प्रवृत्तियों का अभ्यास करते-करते मैं नए प्रकार का व्यक्ति बन गया हूँ। आज मेरा विवेक मेरी कुप्रवृत्तियों और वासनाओं का संचालक है मैं उत्तेजना पर संयम कर सकता हूं। मेरे जीवन के अनुभवों का नवनीत यह है कि समस्त शक्तियों को प्राप्त करने का रहस्य यही है कि तुम अपनी अन्तरात्मा से उपजे सद्-उद्देश्यों को पुष्ट करो, और उनकी प्राप्ति के लिए दीर्घकाल तक अभ्यास करो।"

अभ्यास ऐसा ही अमूल्य-रत्न है, जो—

"करत-करत अभ्यास ते, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, सिल पर होत निशान॥"

जब अभ्यास की बात सोचता हूँ तो स्मृति के आसन पर आ जाता है वह प्रसंग जिस में गुरु-द्रोण अपने धनुर्विद्या-विशारद शिष्य अर्जुन पर गर्व कर रहे हैं; अर्जुन का कुत्ता आता है जिसका मुँह किसी ने धनुष के तीरों से बींध कर ऐसा सी दिया, जैसे दर्जी सुई से वस्त्र

सीता है। अनुसन्धान के बाद मालूम होता है कि वह कार्य करने वाला एकलव्य है जो एक भील-पुत्र है।

द्रोण—"ऐ भील पुत्र! यद्यपि कुत्ते का बाण द्वारा मुंह सीकर तुम ने बड़ा भारी अपराध किया है किन्तु हम तुम्हारी धनुर्विद्या पर मुग्ध हैं। बाण चलाने में तुम कुशल हो। वह कौन सा गुरु है जिसने तुम्हें इतनी अच्छी धनुर्विद्या सिखलाई है? तुम धन्य हो जिसे ऐसा गुरु मिला।"

एकलव्य—"मेरे गुरु का नाम श्री द्रोणाचार्य है।"

द्रोण—(आश्चर्य से) "मैं ही द्रोण हूं। मुझे स्मरण नहीं कि मैंने कब तुम्हें धनुर्विद्या सिखलाई थी?"

एकलव्य—"गुरुदेव! आपने मुझे अस्पृश्य (अछूत) कह कर शिष्य बनाने से इन्कार कर दिया था किन्तु मैंने हिम्मत न हारी। आपकी एक मिट्टी की प्रतिमा बना ली और उसी को सम्मुख रख कर निरन्तर धनुर्विद्या का अभ्यास करने लगा। अभ्यास करते-करते मैं आपकी दया से धनुष चलाने में पारंगत हो गया।"

एकलव्य की सफलता का रहस्य था, अभ्यास। अभ्यास और केवल अभ्यास। यदि वह मूर्ति न भी रखता और निरन्तर अभ्यास करता रहता, तो भी निश्चय पारंगत बन जाता। निरन्तर अभ्यास और एकाग्र चित्त ही उद्देश्य को सफल बनाते हैं।

(३)

हस्तिनापुर के राजमहल की एक झांकी देखिए। एक रात अर्जुन महल में भोजन कर रहे थे कि तेज़ हवा का झोंका आया और दीपक बुझ गया। दूसरा दीपक आने तक थोड़ी देर अन्धेरा रहा पर अर्जुन भोजन करते ही रहे। अंधेरे में भी पूर्ववत् थाली से कौर बना मुँह में

जाता रहा। उन्होंने सोचा कि अभ्यास के कारण ही यह कार्य स्वतः होता रहा है। अभ्यास की महत्ता को ध्यान में रख कर उन्होंने दृढतापूर्वक अन्धेरे में ही निशाना लगाने का अभ्यास किया और पारंगत हो गए। जब परीक्षा हुई तो उन्हें सब राजकुमारों से श्रेष्ठ पाया। नीले रंग की एक छोटी सी चिड़िया दूर एक वृक्ष पर लटका दी गई। युधिष्ठिर धनुष-बाण लेकर लक्ष्य-वेध करने को उद्यत हुए तो गुरु द्रोण ने पूछा—

"युधिष्ठिर ! क्या तुम वह चिड़िया, मुझे तथा अन्य सब राजकुमारों को भी लक्ष्य-वेध के साथ देख रहे हो ?"

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "हाँ, भगवन् ! मैं सब को एक साथ देख रहा हूँ।"

आचार्य द्रोण इस उत्तर को सुन कर निराश हो गये। उन्होंने उत्तर से ही युधिष्ठिर का चरित्र मालूम कर लिया और बिना तीर चलाये ही लौट जाने की आज्ञा दी।

उनके पश्चात् दुर्योधन, भीम आदि अन्य राजकुमारों ने भी वैसे ही उत्तर दिये, जिनसे अस्थिरचित्तता की बात प्रकट होती थी। अन्त में अर्जुन को बुला कर उनसे भी यही प्रश्न किया गया। अर्जुन ने निरंतर अभ्यास किया था और एकाग्रचित्त थे। वे बोले "भगवन्, मुझे केवल चिड़िया का सिर-मात्र दीखता है, न पूरी चिड़िया, न आप, न भूमि, न पेड़ न अन्य कोई वस्तु।"

अर्जुन के उत्तर से अभ्यास और चित्त की एकाग्रता स्पष्ट थी। गुरु प्रसन्न हो गये। उन्हें अर्जुन के लक्ष्य-वेध पर पूरा भरोसा था। उन्होंने अर्जुन को बाण चलाने की आज्ञा दे दी। क्षण भर में चिड़िया का कटा हुआ सिर उनके चरणों पर लोट रहा था। यह है दीर्घकालीन अभ्यास और एकाग्रचित्तता का महत्त्व।

(४)

निरन्तर इष्टसिद्धि के लिये किया हुआ अभ्यास संसार की अनेक सिद्धियों का गुप्त रहस्य है। जहाँ अभ्यास से सिद्धियाँ मिलती हैं, वहाँ दूसरी ओर वह मनुष्य के स्वभाव और परिस्थितियों की विषमता को बदल देता है।

दूसरी ओर बिना चित्त एकाग्र किये या सब ओर से ध्यान हटाये, मनुष्य की शक्तियाँ विकेन्द्रित रहती हैं। वे लक्ष्य पर एकाग्र हुए बिना स्थायी फल उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होतीं।

जो कार्य जितनी बार किया जाता है, वह प्रत्येक बार सरल और प्रिय बनता जाता है। उसकी प्रारम्भिक कठिनाइयाँ दूर हो कर नये गुप्त रहस्य मालूम होते जाते हैं। अन्ततः, प्रारम्भ की समस्त कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं, और कठिन से कठिन कार्य भी सुगम हो जाता है, अभ्यास का ऐसा ही नियम है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो अभ्यास एक प्रकार का मानसिक मार्ग है। प्रत्येक बार एक ही काम को करने से मन में उसकी लकीर गहरी होती जाती है। कई बार होने से वह लकीर इतनी गहरी हो जाती है कि मनुष्य उसका दास हो जाता है।

जब आप प्रथम बार किसी कष्ट-साध्य कार्य को हाथ में लेते हैं, तो अड़ियल घोड़े की भाँति हमारा मन उसे करने से झिजकता, अड़ता, अकड़ता है। कार्यों को करने से अथवा शब्द मात्र उच्चारण में कठिनाई उपस्थित होती है। प्रत्येक नवीन कार्य प्रारम्भ में नितान्त कठिन एवं कष्ट-प्रद प्रतीत होता है। एक बार जब उस कार्य को कर लेते हैं, तो उसकी कठिनाई साधारण मालूम होती है। पुनः पुनः करने से वह अपेक्षाकृत सरलतर हो जाता है। यदि हम कोई भी

कार्य लें, तो भी वह निरन्तर अभ्यास से सरल और पहुँच के भीतर प्रतीत होगा।

शक्ति का रहस्य. अपनी गुप्त सिद्धियों के विकसित करने का एकमात्र साधन अभ्यास है।

आप स्वयं इसे अपने जीवन में परख देखिए। आप जिस गुण, स्वभाव को चरित्र में विकसित करना चाहते हों, उसका अभ्यास आज से दृढतापूर्वक करना आरम्भ कर दीजिये। आरम्भ में झिझक होगी, काम करने को मन न चाहेगा, स्वयं कार्य भी अटपटा और बेतुका प्रतीत होगा, किन्तु यदि एकाग्रचित्त से उस पर डटे रहो, तो वह सुगम बनने लगेगा। उसे जितना उपयोग में लाओगे, वह उतना ही सुगम एवं प्रिय लगेगा। बार-बार उसी मार्ग पर चलने से वह आप के स्वभाव का एक अङ्ग बन जावेगा। निरन्तर और एकान्त अभ्यास से ही मनुष्य अपने उद्देश्य में सफल होता है।

(५)

श्री श्रीप्रकाश जी ने अपने एक लेख में लिखा है, "चार बहुत आवश्यक कार्य जो प्रत्येक गृहस्थ को नियमित रूप से करने चाहिएं, वह मैं न कर सका और बार-बार यत्न करने पर भी इनमें असफल रहा। १. प्रतिदिन व्यायाम करना, २. प्रतिदिन अध्यात्म की आराधना करना, ३. प्रतिदिन अपने अनुभव को रोजनामचे में लिखना और ४. प्रतिदिन आय-व्यय का हिसाब रखना। ये सब के लिये आवश्यक हैं, और मुझे इस का खेद है कि यह सब मैं न कर सका।"

यदि इसका कारण खोजा जाय तो हमें प्रतीत होगा कि इनके मूल में जहाँ निर्बलता रह गई, वह थी अभ्यास तथा एकाग्रचित्तता की कमी। व्यायाम कठोर है। थोड़े दिन पश्चात् मनुष्य को व्यायाम भार

स्वरूप प्रतीत होने लगता है। ज्यों ज्यों व्यायाम का समय आता है त्यों त्यों मन उससे दूर भागता है। क्या यह केवल व्यायाम के विषय में ही है? नहीं मन तो कठोर कार्यों को करने में आनाकानी करता ही है। आवश्यकता इस बात की है कि दृढतापूर्वक इसे सरल कार्यों से रोक कर उपयोगी कार्यों की ओर लगाया जाये।

जोवन को व्यवस्थित करने का अभ्यास आज से ही आरम्भ करें। कार्य, मनोरंजन, तथा निद्रा आदि में जितना समय व्यय करना है उसका लेखा-जोखा बना कर समय पर उसे प्रारम्भ कर दीजिए, हटिए मत। जो समय व्यायाम के लिए निश्चित है, उस समय जरूर उठ जाइए और व्यायाम कीजिए। आत्मचिंतन, संध्या, प्राणायाम या भजन-पूजन इत्यादि के समय एकाग्रचित हो इसका अभ्यास कीजिए। दैनिक डायरी और आय-व्यय का हिसाब सायंकाल सोने से पूर्व लिख सकते हैं। अभ्यास इस सब को आपकी आदत का एक अंग बना देगा। क्रमशः, सरल से कठोर अभ्यासों पर आइए। योग का अभ्यास सब अभ्यासों में श्रेष्ठ है।

"न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः,
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।"

श्वेताश्वतर-उपनिषद्

जिसने योगाभ्यास की अग्नि से अपने शरीर को खूब तपा लिया उसे फिर न रोग सताता है न बुढ़ापा। मृत्यु भी उसके पास आते डरती है। वास्तव में अभ्यास में असीम शक्तियां छिपी हुई हैं।

दूसरों का प्रियपात्र और स्वयं सुखी

सन्तुष्ट बने रहने का रहस्य—

यह संसार हमारी मनोभावनाओं तथा विचारों का प्रतिरूप है। हम दूसरे व्यक्तियों, वस्तुओं अथवा घटनाओं के विषय में जैसा स्वयं विचार करते हैं, अपने या दूसरों के विषय में जिन शुभ-अशुभ कल्पनाओं में निमग्न रहते हैं, वैसा ही दूसरों को भी समझते और उसने वरतते हैं। हम अपने व्यक्तित्व की कसौटी पर दूसरों के चरित्र परखते हैं और उनके अच्छे-बुरे का निर्णय करते हैं।

संसार एक दर्पण की भांति है, जिसमें हम अपना ही प्रतिबिम्ब निहारा करते हैं। हमारे अपने ही विचार, मन्तव्य, भावनाएँ, योजनाएँ और कल्पनाएं साकार हो उठती हैं।

जिन व्यक्तियों में हमें कुछ त्रुटियां दृष्टिगोचर होती हैं, धीरे-धीरे उनके विरोध में हम मन में एक अंध-विश्वास रख लेते हैं। फिर उसके गुण भी दोष ही दीखने लगते हैं। इन दोषों का कारण केवल उस व्यक्ति में ही नहीं, स्वयं आप में भी हैं। स्वयं आप के दोष उस व्यक्ति में प्रतिबिम्बित होते हैं।

परदोष-दर्शन एक मानसिक रोग है। जिसके मन में यह रोग उत्पन्न हो गया है, वह दूसरों में अविश्वास, भद्दापन, मानसिक या नैतिक कमजोरी देखा करता है। अपने व्यक्तियों में भी उसे त्रुटि और

दोषों का प्रतिबिम्ब दीखता है। अपनी असफलताओं के लिए भी वह दूसरों को दोषी ठहराता है।

संसार एक प्रकार का खेत है। कृषक खेत में जैसे बीज फेंकता है, उसके पौधे और फल भी वैसे ही उत्पन्न होते हैं। प्रकृति के गुण सब के लिये एक समान हैं। आपने जैसा बीज बो दिया, प्रकृति से वैसे ही तत्त्व खिंचकर, वैसा ही इच्छित फल आपको प्राप्त हो जाता है। बीज के गुण उसके द्वारा उत्पन्न वृक्ष की पत्ती-पत्ती तथा सूक्ष्म अणु-अणु में विद्यमान रहते हैं।

आपकी मनोभावनाएँ ऐसे ही बीज हैं जिन्हें आप असंख्य मित्रों, सम्बन्धियों, परिवार तथा समाज के व्यक्तियों में बोया करते हैं, और जैसी भावनाएँ हम बोते हैं, वैसी ही उनके द्वारा व्यवहार के रूप में काटते हैं। स्वयं अपने अन्दर हम जैसी भावनाएँ मन में लिए फिरते हैं, वैसे ही हम अपना संसार बना लेते हैं। दर्पण में अपनी ओर से कुछ नहीं होता। इसी प्रकार समाजरूपी दर्पण में आप अपनी आन्तरिक स्थिति का प्रतिबिम्ब प्रतिदिन प्रतिपल पढ़ा करते हैं।

एक कुरूप काला कलूटा व्यक्ति अपने आपको बड़ा सुन्दर समझता था। संयोगवश उसे अपना प्रतिबिम्ब जल में दिखाई पड़ा। उस महाकुरूप काले प्रतिबिम्ब को देख कर वह भयभीत हो उठा। उस प्रतिबिम्ब पर विश्वास न हुआ तो उसने स्वयं दर्पण खरीद कर उसमें अपना मुख देखा, तब उसे वास्तविकता का ज्ञान हुआ। इसी प्रकार यदि हमें कोई ऐसा दर्पण प्राप्त हो जाय, जो हमें हमारी आन्तरिक दुर्भावनाओं विकारों, और कुकल्पनाओं को मूर्तरूप साकार कर दे, तो हमें यह देख कर आश्चर्य होगा कि हमारे अन्तःप्रदेश में दूसरों के प्रति कितनी गंदगी स्वार्थमयी मनोवृत्ति और खोटे विचार एकत्रित हो गये हैं। अपनी आन्तरिक गंदगी के फलस्वरूप ही प्रायः हमें संसार में कुरूपता, गंदगी और दोष का वातावरण दृष्टिगोचर होता है। हम

जैसा देंगे, वैसा ही दूसरों से प्राप्त करेंगे। जब हम इस अनिष्टकर दोषदर्शन वाली दुष्प्रवृत्ति को लेकर संसार में निकलते हैं, तो बदले में हमें दोष, असफलताएं, प्रमाद, झूठ, कपट, मिथ्याचार आदि प्राप्त होते हैं।

तात्पर्य यह है कि हमारे सुख का कारण हमारी सद्भावनाएं ही हो सकती हैं। सद्भावनाएं कल्पवृक्ष के समान हैं जो इच्छित फल देती हैं। दूसरों का प्रिय पात्र बनने और स्वयं सुखी तृप्त रहने का नियम यही है। "सर्वभूतहितेरताः" अर्थात् संसार के समस्त प्राणियों का हित सोचो। कभी किसी का अकल्याण मत सोचो।

अच्छा विचार, दूसरों के प्रति उदार भावना सत् चिन्तन, गुण-दर्शन वे दिव्य मानसिक बीज हैं, जिन्हें संसार में बोकर हम आनन्द और सफलता की मधुरता लूट सकते हैं। शुभ भावना का प्रतिबिम्ब शुभ ही हो सकता है। गुण-दर्शन से आप के और दूसरों के सद्गुणों की अभिवृद्धि होती है। सद्गुण-दर्शन एक ऐसी अच्छी आदत है जो हृदय में शान्ति और मन में दिव्य प्रकाश उत्पन्न करती है। दूसरे के दिव्य-गुण सराहने से उनके अंकुर स्वयं हमारे अन्दर फूट निकलते हैं। हमें सद्गुणों की ऐसी सुसंगति प्राप्त हो जाती है, जिस में हमारा देवत्व विकसित होता रहता है।

स्मरण रखिये, सद्भाव पवित्रता के लिये परमावश्यक हैं। इनसे हमारी शुभ कार्य-शक्तियां अपने उचित स्थान पर लग कर फलित पुष्पित होती हैं। हमें अन्दर से निरन्तर एक ऐसा गुप्त सामर्थ्य प्राप्त होता है, जिससे निरन्तर हमारी आध्यात्मिक उन्नति होती है।

एक विद्वान् ने उचित ही लिखा है, "शुभ विचार, शुभ भावना और शुभ कार्य मनुष्य को सुन्दर बना देते हैं। यदि सुन्दर होना चाहते हो, तो मन से ईर्ष्या, द्वेष और वैर भाव निकाल कर केवल परहित की भावना दृढ करो। कुरूपता की ओर ध्यान न दो। सुन्दर मूर्ति, पवित्र

मूर्ति की कल्पना करो। प्रातः ऐसे स्थानों पर घूमने के लिये निकल जाओ, जहाँ के दृश्य मनोहर हों, सुन्दर-सुन्दर पुष्प खिल रहे हों, पक्षी सुमधुर स्वर में बोल रहे हों, उड़ रहे हों, चहक रहे हों। सुन्दर पहाड़ियों पर, हरे-भरे जंगलों में और नदियों के सुन्दर तटों पर घूमो, टहलो, दौड़ो और खेलो। वृद्धावस्था के तुच्छ विचारों को मन से निकाल दो और बन जाओ हंसते हुए बालकों के समान सद्भावपूर्ण। फिर देखो कैसा आनन्द आता है।

वास्तव में सुख, शान्ति और संतोष की वृद्धि करने वाला बहुमूल्य आभूषण सद्भावना ही है। सद्भावना रखने वाला व्यक्ति सब से भाग्यवान् है। वह संसार में अपने सद्भावों के कारण सुखी रहेगा, पवित्रता की वृद्धि करेगा और दैवी गुणों का शुभ वातावरण उत्पन्न करेगा। उसके चारों ओर एक शुभ वातावरण रहेगा जिसका प्रभाव उसके आस-पास के व्यक्तियों और समाज पर निरन्तर पड़ता रहेगा। उसके सम्पर्क में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्न रहेगा और उसके आह्लादकारी स्वभाव से दिव्य प्रेरणा प्राप्त करेगा।

सद्भावना सर्वत्र सुख, संतोष, प्रेम, समृद्धि उत्पन्न करने वाली कामधेनु की तरह है। इस से दोनों को ही लाभ होता है। जो व्यक्ति स्वयं सद्भावना मन में रखता है वह शान्त एवं संतुष्ट रहता है। सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति भी प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रहते हैं और दिव्य वातावरण का निर्माण होता है।

मन में सदैव सद्भावनाएँ ही रखें—

सद्भावनाएं दुगुनी-चौगुनी हो कर आपके पास लौटती हैं। ये जिस व्यक्ति के हृदय से निकलती हैं, उसे पवित्र प्राणमय बनाती हैं; जिस के प्रति की जाती हैं उसे नवस्फूर्ति एवं नवप्रेरणा प्रदान करती हैं। सद्भावनाओं वाले व्यक्ति के इर्द-गिर्द एक शुभ सात्विक वातावरण

बन जाता है जिस में जगत् के थके हारे मांदे प्राणियों की आत्माओं को सुखद शीतलता प्राप्त होती है।

सद्भावनाएं मनुष्य को घातक विषैले मानसिक विकार से सुरक्षित रखती हैं। वह तुच्छ वासनाओं अथवा क्षुद्र स्वार्थ, घृणा, क्रोध, उत्तेजना की इच्छाओं का दास नहीं रहता। दुष्ट आसुरी भावों की अपेक्षा वह सब का सुख, सबकी कुशलता की दिव्य भावना में मग्न रहता है। यह भावना उसे उदार बना देती है। उसके हृदय में परमात्मा का दिव्य प्रकाश जागृत हो जाता है और उसकी आत्मज्योति प्रज्वलित हो उठती है।

सद्भावना धारण करने से उचित कर्म में प्रेरित करने वाली सद्बुद्धि सदैव जागृत रहती है और हृदय को सत्कर्मों की प्रेरणा मिलती है। सब का भला चाहने वाले व्यक्ति के रोम-रोम में पवित्रता का संचार होता है तथा मन विशुद्ध हो उठता है।

अतः, सावधान होकर स्वार्थपरता, नीचता, बेईमानी, प्रतिशोध, क्रोध और उत्तेजना जैसे विषैले कीटाणुओं को निकालो। यदि तुम स्वार्थ में पड़े केवल अपने ही हित-चिन्तन में लगे रहोगे, तो निश्चय ही तुम अपने जीवन को कांटों से भर लोगे।

इसके विपरीत शुभ भावना, सब चिन्ताएं, भय, ईर्ष्या, द्वेष दूर कर आपको सुख और मानसिक शांति देगी। दूसरों का प्रिय पात्र बनने की कुंजी सद्भावना ही है।

कल्पित भय मन से निकाल दीजिए

तुम यदि अपनी निर्बलता से भयभीत होगे तो वह द्विगुणित होकर तुम्हें अधिकाधिक क्षुब्ध करेगी; तुम्हारी इच्छा, संकल्प, तथा सामर्थ्य शक्तियों का ह्रास करेगी और तुम्हें पाताल के सातवें लोक में गिरा देगी। तुम यदि अपने शत्रुओं से डरोगे तो उन्हें तुम्हारे विरुद्ध युद्ध करने का बल प्राप्त होगा और तुम्हारी त्रुटियां स्वतः तुम्हारे ही विपक्ष में—प्रतिकूलता में कटिबद्ध हो जाएंगी। शत्रु-भय की दूषित कल्पना कितने ही उदीयमान पुरुषों के अंतःकरण को श्मशान भूमि में परिवर्तित कर देती है।

मैं अनेक ऐसे व्यक्तियों को जानता हूं जो अर्ध-विकसित अवस्था में कल्पित शत्रुओं की भावना के चंगुल में फंसकर क्रमशः हीनावस्था को प्राप्त हुए। उनके मन में अधिक परिमाण में भय भरा हुआ था, वे कभी न आनेवाली विपत्तियों तथा कभी प्रतिकूलता न करने वाले कल्पित भय की भावना के वशीभूत होकर अपने साहसपूर्ण प्रयत्नों और महत्त्वाकांक्षाओं को चूर्ण-चूर्ण कर बैठे।

हमारे मन की निर्बल आदतों को जन्म देने वाला केवल शत्रु-भय ही है। अविश्वास, अकर्मण्यता, अधैर्य, ईर्षा, असंतोष, मन की चंचलता तथा ऐसे अनेक मनोविकार भय की संतान हैं। केवल एक कल्पित भय की क्षुद्र भावना को तिरोहित कर देने भर से उक्त विकार स्वतः

विनष्ट हो जाते हैं। जड़ साफ कर देने से विष-वृक्ष की शाखा-प्रशाखाएं स्वतः शुष्क एवं निर्जीव हो जाती हैं।

कितने ही व्यक्ति दूसरों की राय लेने के बड़े इच्छुक हुआ करते हैं। अमुक व्यक्ति के मेरे विषय में क्या विचार हैं? अमुक मेरे बारे में क्या कहता है? साधारण जनता ने मुझे कैसा समझा है? किस दृष्टि से देखते हैं? जब मैं बाजार में निकलता हूं तो बाजार वाले मुझे क्या समझते हैं? जब मनुष्य इस प्रकार के तर्क-वितर्कों में फंस जाए तो समझना चाहिए कि वह कल्पित शत्रुओं के भय से व्यस्त है। उसके मन में कोई गहन निर्बलता छिपी है और वह तज्जनित चित्रों की प्रतिच्छाया यत्र-तत्र देख रहा है। जिस प्रकार दूसरों के दोष-दर्शन एक विकार परिगणित किये जाते हैं उसी प्रकार निज छिद्रान्वेषण भी अत्यंत घृणित है।

बाइबिल में एक स्थान पर निर्देश किया गया है कि मनुष्य के पास जो वस्तु अधिक है वह उसे अधिकाधिक प्राप्त होगी; जो न्यून है वह न्यूनतम भी उससे छीन ली जायगी। यदि तुम्हारे पास निर्बलता का आधिक्य है तो यह और अधिक प्राप्त हो सकती है। इसके विपरीत यदि तुम्हारे पास शुभ्र विचार हैं तो उनके संपर्क से श्रेष्ठ विचारों की अभिवृद्धि होगी। यदि तुम प्रकाश—दिव्य प्रकाश—से अपना अन्तरिक्ष आलोकित करना चाहते हो तो शुभ्र विचारों की संपदा में वृद्धि करो। "हमारा भविष्य प्रकाशमय होगा। उस में श्रेष्ठ भावनाओं का ही महासमुद्र हिलोरें लेगा। हम निश्चिन्त एवं निःशंक होकर जीवन-निर्वाह कर सकेंगे; हमारा अंतःकरण श्रद्धा एवं उत्साह से परिपूर्ण रहेगा और हम आत्म-श्रद्धा का दीपक जगा सकेंगे।" ऐसी परिपुष्ट भावना में रमण करने से दैवीसंपदा में वृद्धि होगी।

तुम्हारी चिंताएं, तुन्हारे भय, तुम्हारा क्षोभ स्वयं तुम्हारी अपनी उत्पन्न की हुई वस्तुएं हैं। स्वाभाविक रूप में तो तुम पूर्ण निर्भय हो; शत्रुओं से निर्भय हो; आने वाले क्लेशों, विपत्तियों, चिंताओं सब से उन्मुक्त हो। अब तुम चाहो तो इनसे स्वयं ही मुक्ति प्राप्त कर सकते हो, और चाहो तो उन्हें गले में हार की तरह पहन सकते हो। तुम्हारा वास्तविक स्वरूप अत्यन्त पवित्र है। सत्-चित्-आनन्द है। किसी प्रकार के अनिष्ट विचार की छाया तुम्हारे अंतःकरण पर नहीं पड़नी चाहिए। तुम्हारा अंतर ही वह दर्पण है जिस में तुम अपने स्वरूप का अवलोकन कर सकते हो। तुम उस दर्पण को श्रद्धा और उत्साह की रेत से रगड़ कर प्रशस्त कर डालो।

इन दुष्टों से रक्षा कीजिए

एक सज्जन लिखते हैं—"जब कभी मैं कार्य से विश्रान्ति पाकर एकान्त में बैठता हूँ और कुछ सोचता हूँ तो मन में अनेक प्रकार की वासनाएं, प्रलोभन तथा कुत्सित कल्पनाएं उछल-कूद मचाने लगती हैं। ये मेरे सम्पूर्ण मन को आवृत कर लेती हैं तथा जितनी पवित्र भावनाएँ हैं, उन सब में व्याप्त हो उठती हैं। ये कल्पनाएं उस समय विशेष रूप से जागृत हो उठती हैं, जब मेरे आस-पास कुछ नहीं होता तथा जब मैं काम से बिल्कुल खाली रहता हूँ या किसी से किसी विशेष विषय पर वार्तालाप करता होता हूँ या जब मेरी स्मरण शक्ति भविष्य के विषय में न सोचकर भूतकाल की स्मृतियों में उलझी रहती है। मैं इन दुष्ट विचारों से इतना विक्षुब्ध हूँ कि न तो कोई प्रेमविषयक उपन्यास पढ़ता हूँ, न चित्र देखता हूँ और न अकेले में बैठता हूँ"। पत्र में आगे जाकर आपका प्रश्न है—"क्या इस आप शत्रुसेना से मुक्ति और इन दुष्ट चिड़ियों से मेरी रक्षा करा सकेंगे?" उक्त सज्जन की समस्या का मैं कई दिन तक समाधान करने का प्रयत्न करता रहा। अन्त में निम्न पत्र लिख दिया।

'उपनिषदों में कुछ ऐसे दुष्ट विचारों का उल्लेख है जिन्हें प्रार्थना अथवा उपवास के अतिरिक्त अन्य किसी भी उपाय द्वारा दमन नहीं किया जा सकता। अतः, मेरी सम्मति में इन दुष्ट पक्षियों से आप दो प्रकार से छुटकारा पा सकते हैं। उधर से मुख मोड़ लेने पर तथा उन

से प्रतिद्वन्दिता करने पर। जैसे ही इनका आक्रमण हो इन से युद्ध कीजिए और उधर से बिल्कुल निश्चिन्त हो जाइये। यदि ये अंतःकरण में प्रविष्ट होकर घर कर चुके हों तो सच्ची प्रार्थना ही एकमात्र उपाय है।'

मानसिक संयम की आवश्यकता :—यदि मन में वासनाओं का तांडव मचा है तो शरीर पर चन्दन का टीका लगाने, माला जपने या गेरुवा वस्त्र पहिनने से क्या लाभ? यदि मन में स्वार्थ, क्रोध, मत्सर, दुष्टता भरी पड़ी है तो साधुओं की वेष-भूषा धारण करने से क्या फायदा? बुद्धि भ्रम, मायाजाल तथा पाप में प्रवृत्त है और आप लोक-कल्याण का बीड़ा उठाने चले हैं? दिल में द्वेष, नीचता और अज्ञान समाया हुआ है और आप समाज-सुधार का मिथ्या आडंबर करने लगे हैं? मन में बुराइयों के ढेर एकत्रित कर बाहर से साफ सुथरे रहने से क्या प्रयोजन? आज हमारे अन्तःकरण से मानसिक संयम प्रायः विलुप्त सा हो गया है। हम बाहर कुछ और अन्दर कुछ होकर ठगों का अभिनय कर रहे हैं। हम पूछते हैं कि क्या वाह्य वेष-भूषा धर्मात्माओं जैसी रखकर हम दुनियाँ को ठग सकते हैं? क्या काठ की हांडी सदैव चढ़ा करेगी? क्या हम सदैव भोली चिड़ियों को अपने माया-जाल में फंसाते रहेंगे? क्या किसी दिन हमारी वास्तविकता दुनियाँ पर प्रकट न होगी?

आत्म-संयम साधना का सब से महत्त्वपूर्ण अंग है। जब तक हम अपने हृदय का उचित परिष्कार नहीं कर लेते, तब तक सैकड़ों वाह्य प्रयत्न निरर्थक होंगे। जब तक मन वासनाओं से आक्रान्त रहेगा, मन में ढोंग, दृष्टि में पाप तथा हृदय में दुराचार रहेगा तब तक आत्मोद्धार के अनेक प्रयत्न व्यर्थ रहेंगे।

क्या मेरा हृदय पवित्र है? यदि आपका हृदय पवित्र है तो गेरुवा

वस्त्रों की क्या ज़रूरत ? आप में हृदय का संयम है तो दिन में पाँच बार घुटने टेक कर नमाज़ रखने की ज़रूरत नहीं। यह समस्त संसार—जो कुछ हम हैं तथा जो कुछ हमारा है, हमारा शरीर, हमारी आत्मा, हमारा कर्म, हमारे भोग, हमारी आन्तरिक दशा पर ही अवलम्बित हैं। अपवित्र मन लेकर तीर्थों, मंदिरों या कीर्तनों में जाने से कौनसा लाभ संभव है?

पवित्र हृदय हमारा सब से बड़ा सहायक है। सम्पद् में, विपद में, प्रत्येक दशा में पवित्र हृदय का बड़ा सहारा रहता है। अन्त समय तक पवित्र हृदय हमें उत्पादक बल प्रदान किया करता है। उच्चाशय वाला व्यक्ति चाहे देखने में पवित्रात्मा न मालूम हो किन्तु उसे दूसरों का चकमा देने की आवश्यकता नहीं आती। संसार में अनेक ऐसे दृढचित्त महापुरुष हो गए हैं जिन्होंने मरते दम तक सत्य और पवित्रता की टेक नहीं छोड़ी और अपनी आत्मा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया। हरिश्चन्द्र राजा थे, पर उस राजसी ठाट-बाट में भी वे साधु रहे। महाराणा प्रताप कहने को तो महाराणा थे, पर उनकी गिनती महान् त्यागियों में है। यदि हृदय पवित्र है तो मनुष्य चाहे किसी भी परिस्थिति में क्यों न हो, उसे अपने गुप्त आत्मबल का बड़ा सहारा रहता है।

एक महापुरुष का प्रवचन है—"प्रत्येक व्यक्ति का भाग्य उसके हाथ में है। प्रत्येक व्यक्ति अपना जीवन श्रेष्ठ रीति से निर्वाह कर सकता है। यही मैंने किया और यदि अवसर मिले तो पुनः यही करूँगा।"

मानसिक संयम का अभ्यासः—आप यह समझ लीजिए कि आपको पवित्रता की ओर चलना है तथा ढोंग, माया तथा वाह्याडम्बर से मुख मोड़ लेना है। लोग चाहे कुछ भी कहते रहें किन्तु जो पथ आत्मा कहती है उसी पर चलते रहना है। जो साधक एक दृढ निश्चय

से कार्य आरम्भ करते हैं, वे आरम्भ में ही आधी लड़ाई जीत लेते हैं। जिस भावना या विचार से मुक्ति पानी हो, उसके बिल्कुल विपरीत विचारों से मन के कोने-कोने को भर लीजिए। कोई छुपा हुआ स्थल न रह जाए, अन्यथा चोर उसी अंधकारमय स्थान में छिपकर बैठ जायगा। यदि आप कामवासना से मुक्त होना चाहते हैं तो पवित्रता की बातों से, पवित्र महापुरुषों की वार्त्ताओं, उपदेशों और प्रवचनों से मन को इतना भरापुरा कर लीजिए कि कोई स्थान कुत्सित वासना के लिए न रह जाय। यदि आप कायरता से मुक्त होना चाहते हैं तो साहस निर्भीकता, तथा निडरता की भव्य भावनाओं से मन को भर लीजिए। उसी में मन को एकाग्र रखिए। उसी में अपना लक्ष्य जमाए रखने से दुष्ट भावों से मुक्ति होती है।

जब तुम्हारा मन इधर-उधर भटकने लगे, घबराने लगे, व्याकुल होने लगे तो एकान्त में नेत्र मूंद कर बैठ जाओ और "सब स्थानों में, मेरे मन में पवित्र तत्त्व भरा हुआ है" ऐसा सोचना शुरू कर दो। मैं वही पवित्र चेतना तत्त्व हूं, पवित्र परमात्मा का एक खण्ड हूँ—ऐसा भाव करो कि तुम अपने शरीर को और वर्तमान विषयों को भूल सको। इस अभ्यास से तुम्हें पवित्रता प्राप्त हो जायगी। दीर्घ अभ्यास से वह तुम्हारी आदत बन जायगी। समस्त वातावरण में पवित्रता—इधर-उधर सब जगह पवित्रता ही देखने की आदत—अनिष्ट वासनाओं से मुक्ति प्राप्त करने का सुलभ उपाय है।

मन का पलायनवाद

मनुष्य की मानसिक निर्बलताओं में मन का पलायनवाद (Escapist attitude) अर्थात् कठिन काम से बचने की आदत, या कार्य को मध्य में छोड़ देने की आदत है। पलायनवादी मन कठिन कार्य को न करने के पक्ष में अनेक छोटी-मोटी दलीलें सोचता है; अपने आप को कठोर कार्य से बचाने के लिए बुद्धि का उपयोग किया करता है। वह कार्य तो करना नहीं चाहता; उसे क्यों न करना चाहिए—इसी के पक्ष में नाना प्रकार की दलीलें सोचता-विचारता रहता है।

मान लीजिए, आपको किसी के यहां जरूरी मिलने जाना है। वह आपका बड़ा अफसर है। उससे मिलनसारी में अभिवृद्धि करने से आपके दो-चार काम निकल सकते हैं। लेकिन पलायनवादी मन आप से यह निर्देश करेगा, "अभी क्या आवश्यकता है? हमारे पास वस्त्र अच्छे नहीं हैं, अतः किस प्रकार मिलने जायँ? अफसर का घर बड़ी दूर है, संभव है वे मिलें ही न? न जाने उनका 'मूड' कैसा हो? समय निकाल सकें अथवा नहीं? हमें कुछ कहने के लिए तो है ही नहीं उनसे बातें किस प्रकार आरम्भ की जायँगी?" इत्यादि। इन दलीलों को सामने रखकर आप अफ़सर से मिलने जाने की बात साफ टाल जाते हैं। बुद्धि आपकी दाद देती है। इन झूठी दलीलों से आप किसी प्रकार मन को समझा कर चुप हो रहते हैं।

आपकी कमजोरी है, कठिन परिस्थिति का सामना न कर सकना; संघर्षपूर्ण स्थल से पलायन कर जाना, अर्थात् साफ़ बच कर निकल जाना। इस कठिन अवसर पर बजाय इसके कि आप अपने साहस और पौरुष से डट जाते, आप कायर मनुष्यों की भाँति पीठ दिखाते हैं; भागते हैं। आपकी अन्तरात्मा आपको धिक्कारती है, बुरा-बुरा कहती है। अन्तरात्मा की ध्वनि को संतुष्ट करने के हेतु आप बुद्धि का दुरुपयोग करते हैं। अपनी निष्क्रियता, निर्बलता, कायरता और शक्तिहीनता की पुष्टि के लिए मस्तिष्क से ऐसी-ऐसी तर्क खोज कर निकालते हैं जो शायद आप चाहते नहीं हैं। इन मिथ्या तर्कों से अन्तरात्मा की पुकार शान्त हो जाती है। आप अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं कर पाते।

मन का यह पलायन विशेष रूप से इन कार्यों में देखा जाता है—(१) अध्ययन तथा कठिन शुष्क आध्यात्मिक विषयों का पठन-पाठन (२) प्रातः व्यायाम या स्वाध्याय (३) बड़े व्यक्तियों से मिलना-जुलना, बातचीत (४) परीक्षाएँ या इन्टरव्यू (५) घरेलू हिसाब-किताब, आय-व्यय का ब्योरा (६) दूसरों से ली हुई वस्तुओं का न लौटाना (७) अपनी वस्तु दूसरों से न लेना (८) पत्र न लिखना (९) घर की सफाई न करना, वस्त्रों और पुस्तकों को इधर-उधर अस्त-व्यस्त पड़े रहने देना, बिस्तर न उठाना, तौलिया न धोना। (१०) ऋण की अदायगी न करना (११) अपने नौकरों का वेतन न देना।

इन सभी तत्त्वों में मन का पलायन स्पष्ट दिखाई देता है। अध्यात्म, दर्शन, गणित, विज्ञान इत्यादि शुष्क एवं जटिल विषयों से मन उचटता है। प्रातःकाल जब व्यायाम का समय आता है, तो तबियत यह करती है कि व्यायाम न किया जाय। एक दिन यदि चूक जाते हैं, तो दूसरे दिन मन भारी रहता है। व्यायाम की ओर जाता ही नहीं। यदि किसी प्रकार उस ओर प्रवृत्ति होती है, तो बड़ी कठिनता

से कुछ काम बन पड़ता है। परीक्षा देने में जिस भारीपन, आलस्य, कमजोरी का अनुभव होता है, उसे प्रत्येक विद्यार्थी अनुभव करता है। लिया हुआ ऋण लौटाने और उधार ली हुई वस्तु के दाम वापस करने से मन पलायन करता है।

मन का पलायन इच्छा और संकल्प शक्तियों की शिथिलता का परिणाम है। जिस व्यक्ति की संकल्पशक्ति दुर्बल है, वह मन पर समुचित नियंत्रण नहीं कर पाता। जब तक कार्य सरल रहता है, तब तक तो वह मामूली तौर पर कार्य में लगा रहता है, किन्तु जहां कुछ कठिन विचारपूर्ण कार्य आया, मन तुरन्त कार्य से हटता है।

संकल्प शक्ति ही मनुष्य है। वही मनुष्य के बड़प्पन या दुर्बलता का कारण है। दृढता ही मनुष्य की उन्नति का रहस्य है। यदि दुर्भाग्यवश आप मन की इस वृत्ति से पीडित हैं, तो इसे निकाल डालिये।

तनिक सोचिये, यदि आप कठिन कार्यों को मध्य ही में छोड़ दिया करेंगे तो किस प्रकार उन्नति के चरम शिखर पर पहुंच सकेंगे? जब एक बार आप किसी कार्य को करने की सोचते हैं–तो उस पर सभी दृष्टिकोण से विचार कर लीजिए, फिर सूई की तरह उस में गड़ जाइये। अपने निश्चय पर डटे रहिये। निःसार वस्तुओं के चिंतन में निष्प्रयोजन अपनी शक्तियों को व्यय न कीजिये।

मेरा चित्त सुस्थिर है। मैं अपने निश्चयों के प्रति दृढ हूँ। कार्य को मध्य ही में नहीं छोड़ता हूँ। दुर्बलता और क्षुभित अवस्था को मैंने त्याग दिया है। मेरे चित्त में कभी क्षोभ उत्पन्न नहीं होता। मेरा मन शुष्क कार्यों में भी जमता है। इस दृढ संकल्प की भावना पर अभ्यास करने से मानस क्षेत्र से पलायन की दूषित प्रवृत्ति निकल जाती है।

चंचल मन का नियंत्रण।

अंग्रेजी में "ग्रास हौपर माइन्ड" एक विशेष अर्थ रखता है। टिड्डी कभी एक स्थान पर स्थिर होकर नहीं बैठती, क्षण-क्षण में इधर से उधर कूदती-फांदती रहती है। एक पत्ती से दूसरी पत्ती पर जाती है। यही हाल कुछ लोगों के मन का होता है। अति चंचल मन ढुलमिल स्वभाव के व्यक्तियों को टिड्डी प्रकृति वाले व्यक्ति कह सकते हैं।

इच्छाशक्ति की निर्बलता से जिस मानसिक कमजोरी की सृष्टि होती है उसकी मूल वृत्ति चंचलता है। मन की वृत्ति इच्छा-जनित शुभ वस्तु तथा उत्तम उद्देश्य पर स्थिर नहीं होती, पुनः पुनः नये प्रदेशों की ओर आकर्षित होती है।

मन की चंचलता से बड़ी कठिनाई यह होती है कि विकास नहीं हो पाता। विकास का नियम है—निरन्तर मन से एक ही दशा में काम लेना, पुनः पुनः अभ्यास करना। चंचल व्यक्ति दस-पन्द्रह मिनट भी चित्त को एक स्थान पर एकाग्र नहीं कर पाता। विद्यार्थी, सिनेमा-प्रिय, शौकीन, कवि, व्यापारी, यात्री, क्लर्क इत्यादि चंचलता के कारण सदैव यही शिकायत करते हैं कि अमुक पुस्तक या विषय समझ में नहीं आता, अध्यात्म विषय कठिन है इत्यादि। बालक सर्वदा अति चंचल रहते हैं। उनका मनोबल तथा एकाग्रता की शक्तियां अति अविकसित रहती हैं।

टिड्डी वृत्तिवाला व्यक्ति कभी अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता, क्योंकि वह एक सुनिश्चित, सुकल्पित उद्देश्य पर तीव्रता से नहीं चल पाता। मध्य में आने वाले प्रलोभन, आलस्य, प्रमाद, अशान्ति इत्यादि उसे एकनिष्ठ नहीं रहने देते। उसकी इच्छाएँ, वासनाएँ और स्मृतियाँ निरन्तर दुर्बल होती जाती हैं। मनुष्य के चित्त को विचलित करने वाले दुर्व्यसनों में फँसने वाले अनगिनत मानसिक विकार और भाव हैं। बड़े-बड़े विद्वान् मनोवेग और निकृष्ट विकारों से उत्तेजित हो कर बड़े-बड़े अनर्थ कर डालते हैं, वर्षों का किया-कराया क्षण भर में नष्ट कर देते हैं। तनिक से आलस्य या प्रमाद से इतनी भारी गलती हो जाती है कि आयु-पर्य्यन्त वह ठीक नहीं हो पाती।

विकारमय स्वार्थी विचारों से मुक्ति—

आपका मन दो प्रकार के विचारों में भटकता है। प्रथम तो मन वाह्य विषयों में दिलचस्पी लेता है। विषय नाना प्रकार के हैं। इनका सम्बन्ध हमारी पांच इन्द्रियों से है। कामेच्छा, क्षुधा, पिपासा, सुन्दर वस्त्र, गृह, सामाजिक प्रतिष्ठा, मान, सौंदर्य, शृङ्गार, यौवन इत्यादि में मन भटकता है। वह इनका गुलाम बनता है और उद्वेगों का शिकार बनता है।

दूसरे पदार्थ आन्तरिक है। आप शान्ति चाहते हैं। मन के अन्दर, ईर्ष्या, द्वेष, भय, स्वार्थ क्रोध, लोभ, इत्यादि वृत्तियां सदैव संघर्ष मचाती हैं। वृत्तियां चंचल रहती हैं। आप दिन प्रतिदिन तुच्छ प्रसंग और पुरानी कटु स्मृतियों के कूड़े-करकट में फँसे रहते हैं।

उपर्युक्त वृत्तियों से मुक्ति के लिए निम्न उपाय कीजिए।

(१) ऐच्छिक ध्यान—

हम अपनी इच्छा को एकविशेष दिशा में आग्रह-पूर्वक लगायें।

निकम्मे खाली न बैठें, वरन् मन को पुनः पुनः उसी कार्य में लगाये रहें। जब कोई अनिष्ट विचार मन में आवे तो उसे अपनी इच्छाशक्ति से उत्तम विचार में परिवर्तित कर देना चाहिए। मस्तिष्क की धारणा में इस प्रकार के आग्रह से निम्न मन-स्तर बदल कर उच्च स्थिति प्राप्त हो सकती है। ऐच्छिक ध्यान मन की चंचलता से मुक्ति का सर्वोत्तम उपाय है।

(२) एकाग्रता की सिद्धि—

जब आप मन को ढीला छोड़ते हैं तो बुरे विचार और प्रलोभन बल पूर्वक मनःप्रदेश में घुस आते हैं। इसका कारण मनुष्य की बहिर्मुखी प्रवृत्ति है। ऐसे मन के लिए एकाग्रता का अभ्यास अमृतोपम उपाय है। चंचल मन को अपने उद्देश्य पर जमाइये। ऐसी वृत्ति कीजिए कि नेत्र चाहे खुले हुए हों, अन्दर से आपका मन एक निश्चित स्थान, उद्देश्य, पात्र और परिस्थिति में एकाग्र रहे।

गीता में निर्देश है "जिस प्रकार नाना नदियों के चंचल जल अचल प्रतिष्ठावाले विशाल समुद्र को अपनी हलचल से विचलित नहीं कर सकते वैसे ही स्थिरचित्तवाले महान् आत्मा को संसार की हलचल उद्वेलित नहीं कर सकती। मनोनियमन के परिपूर्ण ज्ञान से युक्त हो कर वह पूर्ण शान्ति में निवास करता है।

(३) प्राणायाम :—

प्राणायाम के अभ्यास से बुद्धि विकसित होती है, मन शान्त, स्थिर होता है और आन्तरिक आनन्द प्राप्त होता है। प्राणायाम करने वाला सुखी रहता है। प्राणायाम से मन को अपने अधीन कर लीजिए। अनैच्छिक ध्यान ही हमारे लक्ष्य-चिंतन में और ध्येय की प्राप्ति में वाधा डालता है। अतः, प्राणायाम द्वारा इस विक्षेप को दूर करना चाहिए।

(४) निरन्तर अभ्यास :—

हमारा मन अभ्यास का क्रीत दास है, अतः आप नीरस विषय, जिन से मन भागता है, अपने मानसिक नेत्रों के सम्मुख रखिये। आँखें बन्द कर उन्हीं को अपनी कल्पना द्वारा प्रस्तुत करने की कोशिश कीजिए। भावना को बार-बार दुहराने से मन में उत्तेजना शक्ति के रूप में बदल जायगी। एक समय में एक ही बात, स्थान, वस्तु और तत्त्व पर विचार करने का अभ्यास कीजिए। प्रारम्भ में शुष्क तथा नीरस वस्तु पर चित्त को एकाग्र करना कठिन प्रतीत होता है। कालान्तर में मन स्वयं एक तत्त्व पर लगने लगता है।

(५) मौन का महत्त्व :—

चंचलता दूर करने के लिए चुप रहना अर्थात् वाणी का उपवास बड़े महत्त्व का है। इसके द्वारा हम अपनी आत्मा और विश्व के वास्तविक स्वत्व को पहिचानने में सफल हो सकते हैं। वास्तविक एकाग्रता कोलाहल-पूर्ण वातावरण में नहीं, प्रत्युत शान्त और मौन वातावरण में ही हो सकती है।

—

मनोवेगों का रेचन

हमारे मनोवेग तीव्रता से इधर-उधर भागते हैं। कभी हम कामोत्तेजक होकर अश्लील और अभद्र गाने गा उठते हैं, सिनेमा के गन्दे कामुकता-पूर्ण गजल दुहराने लगते हैं; तो कभी क्रोध से पागल होकर मार-पीट कर बैठते हैं। कभी घृणा से नाक-भौं सिकोड़ लेते हैं, तो कभी ईर्ष्या और द्वेषवश हत्या तक कर बैठते हैं। लोभ में आकर हम ऐसे-ऐसे गर्हित कार्य कर बैठते हैं, जिन पर आयु भर पछताते रहते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष ये सभी मनोवेग अपने साथ एक भयंकर तूफान लेकर आते हैं।

यदि तीव्र मनोवेगों के मानसिक रेचन के लिए कोई मार्ग नहीं रहता, तो वे उद्वेगजनक और अनिष्टकर हो जाते हैं। आज सभ्यता के आवरण में मनोवेगों की दमन-क्रिया चल रही है। हमारी शिक्षा और संस्कृति मनोवेगों को दबाये हुए है। दमन एक अप्राकृतिक और अहितकर मानसिक क्रिया है। जब तक इन बातों को प्रकाश कर उन्मुक्त अवसर प्राप्त न हो, तब तक मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त नहीं हो सकता। दमन इस समस्या का हल नहीं है। आप कुछ काल के लिए इससे मुक्ति पा सकते हैं, किन्तु समय पाकर किसी भी मानसिक रोग के रूप में यह प्रस्फुटित हो जायेगा।

उद्वेगों को दबाने की आवश्यकता नहीं, उनके नियमन और संतुलन की आवश्यकता है। यदि हम कुछ विवेक से कार्य करें, तो अपने मनोवेगों को नये और उत्पादक मार्ग प्रदान कर सकते हैं।

उदाहरण-स्वरूप सब से उत्कट मनोवेग वासना को लीजिए। वासना भी एक गुप्त शक्ति है। यदि निंद्य मार्गों से बचा कर हम उसे उच्च आध्यात्मिक स्तर पर ले आयें, तो उसके द्वारा हम चित्रकला, गायन-विद्या, शिशुपालन, कविता, साहित्य, भक्ति इत्यादि में निपुणता प्राप्त कर सकते हैं। ये सब विद्याएँ कामवासना के उच्च विकास पर निर्भर हैं। वासना का उच्च स्तर चित्रकला में जान डाल सकता है; संगीतज्ञ को ऐसा मर्म-स्पर्शी बना सकता है कि घर-घर उसकी पूजा हो। इसका उपयोग काव्य में करने से रसप्रवणता, माधुर्य, भक्ति से स्निग्ध भजनों का सृजन हो सकता है।

क्रोध करना है, तो वह अपनी कमजोरियों पर कीजिये। निर्बलताओं को चुन-चुन कर निकालिये; प्रत्येक कमजोरी पर दुःख प्रकट कीजिये। अच्छी बातों का संग्रह करते रहिये। जो व्यक्ति सद्गुणों को अपने अन्दर संग्रह करने का लोभ करता है; साधु को घर से बिना भोजन नहीं जाने देता; सामर्थ्यानुसार दान देता है, वह उत्तरोत्तर अन्य गुणों का विकास करता है।

लोभ, मद, मत्सर—तीनों प्रत्यक्ष शत्रु हैं। यथासंभव इनकी वृद्धि ही न होने देना श्रेयस्कर है। जरा विचार कीजिये, आप को किस वस्तु का लोभ है? रुपया-पैसा स्वयं तो खाया नहीं जा सकता। उससे भोजन, मकान और वस्त्र की प्राप्ति होती है। इन सब की भी सीमाएँ निश्चित हैं। आप अच्छे से अच्छा भोजन करें, आलीशान मकान में रहें, सुन्दर वस्त्र पहिनें, किन्तु इन सब से आत्मा को शान्ति कदापि प्राप्त नहीं होगी। आपकी आत्मा वैराग्य के पथ पर अग्रसर होगी।

एकमात्र आत्मा में ही लीन हो जाना, उसी अनन्त तत्त्व की प्राप्ति ही सच्चा सुख प्राप्त करा सकती है। शेष में केवल रसाभास है। वास्तविक सुख, सत्, चित्, आनन्द प्रधान आत्मा में ही है। आपके समस्त मनोवेग उसी की ओर अग्रसर होने चाहिएँ।

मानसिक तनाव से दूर रहिए !

मनुष्य का सुख, शान्ति एवं आनन्द बाह्य जगत् में न होकर आन्तरिक हैं। आन्तरिक अवस्थाओं का प्रतिबिम्ब हमारे मुख-मण्डल पर प्रतिबिम्बित होता रहता है। आन्तरिक अशान्ति का प्रमुख कारण है—तनाव (टैन्शन)। तनाव ऐसी मनोदशा है, जिसमें मनो-वृत्तियाँ खिंची-तनी रहती हैं और शिथिलीकरण नहीं होने पाता। तनाव से मनुष्य की कार्यशक्ति क्षीण हो जाती है, स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है; मानसिक अशांति, चिड़चिड़ापन और ईर्ष्या-जन्य कटुता उत्पन्न होती है। मनुष्य अपनी स्वाभाविक अवस्था में नहीं आ पाता। अतः विवेक-बुद्धि सहज स्वाभाविकता से अपना कार्य नहीं कर पाती। मनुष्य की सद्भावनाओं को अपना निश्चित कार्य करने की प्रवृत्ति नहीं रहती।

कुछ व्यक्ति सदैव खिंचे-तने से रहते हैं। उनसे कोई बात कीजिए, जैसे किसी दूसरे लोक में विहार कर रहे हों या स्वयं अपनी ही समस्याओं में उलझे हुए हों। चिड़चिड़ापन और खिन्नता का कारण आन्तरिक तनाव है। वे अपनी सहज स्वाभाविक स्थिति में न होने के कारण प्रफुल्लता का आनन्द नहीं उठा सकते।

मानसिक तनाव का कारण क्या है ? यह गुप्त या प्रत्यक्ष भय का फल है। मनुष्य गुप्त रूप से किसी-न-किसी कारण से भयभीत हो जाता है। यह भय अनेक प्रकार का हो कर तनाव की सृष्टि करता है।

विद्यार्थी अध्यापक से डर कर तनाव प्राप्त करता है; बच्चे माता-पिता की ताडना से तनाव की स्थिति में आ जाते हैं। अनेक व्यक्ति सामाजिक या नैतिक बन्धनों से भयभीत होकर खिंचे से रहते हैं। छोटे राष्ट्र बड़े राष्ट्रों से भयभीत होकर खिंचाव का अनुभव करते रहते हैं। अपराधी तनाव के कारण ही खून, चोरी और अनाचार किया करते हैं। उत्पात करने वाले बच्चे की शरारत का मूल उसके आन्तरिक जगत् में स्थित किसी-न-किसी प्रकार का तनाव है। जैसे अधिक तनाव से तार टूट कर सारंगी से सुमधुर संगीत की सृष्टि नहीं होती; उसी प्रकार अधिक मानसिक तनाव वाले व्यक्ति अन्दर ही अन्दर एक गुप्त पीड़ा का अनुभव किया करते हैं। अधिक तनाव होने से प्रमाद या पागलपन जैसे रोग उत्पन्न होते हैं।

अपराधी बच्चे का कारण मानसिक तनाव है। माता-पिता बच्चों को डराते-धमकाते रहते हैं। फलतः, वे अन्दर ही अन्दर प्रेम की कमी का अनुभव करते रहते हैं। ऐसे बच्चे ऐसे अनेक असामाजिक कार्यों में लिप्त हो जाते हैं, जिनसे उनके इस तनाव को कुछ शान्ति प्राप्त होती है।

पशुओं में प्रायः देखा जाता है कि जब वे डर कर तनाव की स्थिति में आ जाते हैं, तो मनुष्य पर आक्रमण तक कर बैठते हैं। उन की आँखें लाल हो जाती हैं; वे आनन्द से न जुगालते हैं, न दूध देते हैं। तने हुए घोड़े को थोड़ी देर टहलाने की प्रथा बड़ी मनोवैज्ञानिक है। ऐसा करने से घोड़ा धीरे-धीरे फिर अपनी पहले जैसी स्वाभाविक स्थिति में आ जाता है।

मान लीजिए, आप किसी से ऋण लेते हैं। यह ऋण एक गुपचुप भार के रूप में आपके गुप्त मन में चिन्ता का रूप ग्रहण कर लेता है। आप जहां कहीं भी जाते हैं, यह तनाव मन में बना ही रहता है।

किसी से कुछ भी उधार ली हुई वस्तु एक प्रकार का तनाव उत्पन्न करती है। जब तक वह वस्तु या ऋण न उतार दिया जाए, मनुष्य एक अदृश्य तनाव से छटपटाता रहता है। हर तरह का उधार, दूसरों से किए गए वायदे, ऋण और उत्तरदायित्व मानसिक तनाव की सृष्टि किया करते हैं। कभी-कभी अति भावुकता (दूसरों के लिए अति दयार्द्र हो जाना) भी मानसिक भार की सृष्टि कर परेशान किया करती है।

तनाव से बचने के लिए कार्य का चुनाव करते समय देखिए कि आप की विवेक बुद्धि और अन्तःकरण इससे संतुष्ट है, अथवा नहीं? यदि नहीं, तो अवश्य ही यह कार्य मानसिक तनाव उत्पन्न करेगा। अतः, सावधान! अन्तःकरण जिस में सहमत हो, उसी को करने से मानसिक शान्ति प्राप्त होती है।

एल्बर्ट टर्नर लिखते हैं—"मन में यह आशंका कि कोई पाप न हो जाय, कोई ग़लती न कर बैठें, जिस का मार्जन या प्रायश्चित्त संभव न हो—यह विचार स्वास्थ्य एवं दीर्घ-जीवन का शत्रु है। मनुष्य के जीवन पर दूसरा बुरा असर डालने वाला दुर्गुण है—अधिक सतर्कता। अति सतर्क व्यक्ति अन्दर ही अन्दर डरा करता है; उसे सब जगह ख़तरा और अनिष्ट की संभावना नज़र आने लगती है। संभावित बुराइयों से बचने की चिन्ता से नाडी-मण्डल कमज़ोर पड़ जाता है।"

आप अन्दर-बाहर से प्रसन्न और संतुष्ट रहिए। व्यर्थ की झंझटों में, दूसरों के मत, आलोचना इत्यादि की ओर किंचित् भी ध्यान मत दीजिए। मन में धीरता और आन्तरिक संतुलन को बनाए रखिए। नैराश्य-जनित भय को समीप मत आने दीजिए।

आप महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं। आप जिस स्थान पर भी हों, सादगी और सचाई से छोटे पैमाने पर अपने कर्त्तव्य का पालन कर प्रफुल्ल जीवन व्यतीत कर सकते हैं। यदि आप व्यर्थ के झूठे दिखावे या

मिथ्याचार में फसेंगे, तो अन्दर तनाव की स्थिति आ जायगी। ग़रीबी और सचाई, अर्थात् जैसे हैं, उसका वास्तविक स्वरूप जनता के सामने रखने से तनाव न होगा।

आन्तरिक तनाव को दूर करने के लिए सामर्थ्य के बाहर वाले कार्यों को हाथ में न लें। न क़र्ज़ लें, न दें। दूसरों के उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने से पूर्व खूब सोच-समझ लें। मन पर अनावश्यक झगड़ों में पड़ कर भार न बढ़ने दें। जीवन के कठिन स्थलों में धैर्य और अध्यवसाय से काम लें। हँसने मुस्कराने की आदत डालें। प्रसन्नता और चित्त की प्रफुल्लता तनाव की गम्भीरता को दूर करती हैं।

तनाव से सावधान रहिए।

मन को उद्विग्न न कीजिए

मानसिक सन्तुलित अवस्था मन की स्थिर-बुद्धि-सम्पन्न शान्तिमय स्थिति है, जिसमें विवेक पूर्णरूप से जाग्रत रहता है। जैसे तराजू के दोनों पलड़े समान रूप से भारी होने के कारण डण्डी को सन्तुलित रखते हैं, वैसे ही मन की पूर्ण सन्तुलित अवस्था में मानसिक उत्तेजना वितर्क, व्यर्थ की उथल-पुथल और चिन्ता-वासना आदि से मुक्त रहती है। इस अवस्था में मनुष्य अच्छी तरह विवेक को जाग्रत रख कर सोच-विचार कर सकता है।

यह पूर्ण आनन्द की स्थिति है। इस अवस्था में मनुष्य अपने भले-बुरे को अच्छी तरह समझता है। वह अपने शुभ संकल्पों का निर्माण करता है, कर्तव्य-बुद्धि से उसे अपने भले-बुरे का ज्ञान रहता है। उसका आत्म-विश्वास बढ़ जाता है। स्थिरता एवं शान्ति के कारण उसकी मानसिक शक्ति में भी अभिवृद्धि होती है। व्यर्थ चिन्ताएँ नष्ट हो जाती हैं। मिथ्या दुःखों से मुक्ति प्राप्त होती है। हम अनुचित माया, मोह के विकारों से बचे रहते हैं।

पूर्ण सन्तुलित व्यक्ति मानसिक उद्वेगों से मुक्त रहता है। उद्वेग एक प्रकार का उफान है, मन में उठने वाला विद्रोह है। यह मन की असाधारण अशान्त स्थिति है। उद्वेग में मनुष्य का शरीर एक प्रकार के कम्पनों से परिपूर्ण हो उठता है और वह थरथराहट से भरा रहता है। उद्वेग में धैर्य नष्ट हो जाता है, क्रोध ऊँचा उठ आता है और व्यर्थ की

शङ्काएँ बुद्धि को भ्रष्ट कर देती हैं। भय, चिन्ता, ईर्ष्या, लोभ, वासना के ताण्डव विवेक को अपना कार्य नहीं करने देते। वही मन सन्तुलित हो जाने पर स्थिर बुद्धि ग्रहण करता है, प्रसन्न और उदार बनता है, सन्तुष्ट और शान्त बनता है, उसे भविष्य से बड़ी-बड़ी आशाएँ होती हैं।

सन्तुलित मन में एकाग्रता सबसे बड़ी शक्ति है। सन्तुलित व्यक्ति एक-विचार पर सम्पूर्ण शक्ति केन्द्रित कर पाता है। उसकी विचारशक्ति विकेन्द्रित हो कर व्यर्थ ही नष्ट नहीं होती। अकारण ही वह भय तथा काल्पनिक दुःखों से ग्रसित नहीं होता।

मानसिक सन्तुलन पर स्वास्थ्य का बड़ा प्रभाव पड़ता है। जब स्वास्थ्य अच्छा होता है और शरीर रोगमुक्त होता है, तो मानसिक सन्तुलन ठीक रहता है। रोगी शरीर होने पर प्रायः सन्तुलन बिगड़ जाता है। कभी-कभी मानसिक सन्तुलन के भङ्ग होने का कारण बुरा स्वास्थ्य होता है। स्वयं अपने मानसिक सन्तुलन का निरीक्षण कीजिए। यदि आपका मानसिक सन्तुलन भङ्ग है, तो उसका दूषित प्रभाव उसके शरीर पर प्रकट हुए बिना नहीं रह सकता। पाचन-विकार से शिथिलता, चिड़चिड़ापन और निराशा उत्पन्न होती है। यदि शरीर में कोई कष्ट हो, तो मनुष्य दुःखी, अतृप्त एवं अशान्त बना रहता है। प्रायः देखने में आता है कि जीर्ण रोगियों को क्रोध एवं आवेश अधिक आता है उनका स्वभाव नैराश्य-पूर्ण होता है, दुःख-पूर्ण मनःस्थिति अधिक रहती है।

भोजन का मानसिक सन्तुलन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। आप जैसा भोजन लेते हैं, वैसा ही सन्तुलन स्थिर रहता है। खराब, दूषित, बासी, या अभक्ष्य पदार्थों के भोजन से मानसिक सन्तुलन भङ्ग हो जाता है। मद्य, तमाकू, पान, सिगरेट से वासना उद्दीप्त होती है। इनका प्रयोग करने वालों में कामोत्तेजना बनी रहती है। मांस के साथ क्रूरता का अटूट सम्बन्ध है। मांस खाने वाले तुनुकमिजाज, उत्तेजक

स्वभाव, क्रुद्ध होने वाले क्रूर हिंसामय प्रवृत्ति के होते हैं। मिर्च के साथ उत्तेजना का निकट साहचर्य है। राजसी भोजन, अधिक भोजन और अभक्ष्य पदार्थों के भोजन सन्तुलन को नष्ट करने वाले हैं। इनके विपरीत शाक, भाजी दूध इत्यादि के साथ सात्त्विक भावनाएँ संयुक्त हैं। शाकाहार करने वाले ऋषि-मुनि गण सरलता से मानसिक सन्तुलन स्थिर रख सके हैं। सात्त्विक भोजन सुख-शान्ति की अभिवृद्धि करने वाला है।

संगति और वातावरण मानसिक सन्तुलन को सुधारते बिगाड़ते रहते हैं। जिसकी संगति सदाचारी विद्वान्, त्यागी, निस्पृह, उदार व्यक्तियों की हैं, जो अच्छे विचारों वाले व्यक्तियों के संपर्क में रहते हैं, वे व्यक्ति शान्त रहते हैं। प्राचीन ऋषि-मुनि संसार के कोलाहल से दूर प्रकृति के उन्मुक्त प्रशान्त वातावरण में कल-कल झरते हुए झरनों के किनारे विचार तथा ब्रह्म-चिन्तन किया करते हैं। उस स्थिति में उनका सन्तुलन स्थिर रहता था। यदि हम संतुलित मनःअवस्था के इच्छुक हैं, तो हमें भोजन, संगति और वातावरण, इन तीनों ओर से आत्म-सुधार करना चाहिये।

सहिष्णुता की वृद्धि करें। सहिष्णुता का तात्पर्य न केवल कष्ट और विरोध सहन-शक्ति है, प्रत्युत आने वाले संकट में शान्त और सन्तुलित रहने का गुण भी है। सहिष्णु व्यक्ति गहन-गम्भीर समुद्र की तरह है जिसकी अनन्त गहराई पर मामूली तूफानों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह अनायास ही आए हुए कष्टों से घबराता या पथ-च्युत नहीं होता, वह शान्ति से कठिनाइयों को अपने ऊपर झेलता है, खतरे में ठण्डे दिमाग से काम करता है। यह शान्त और नित्य साथ करने वाला गुप्त साहस है।

सहिष्णुता निष्क्रिय साहस और वीरत्व है। ऐसा व्यक्ति अन्तःकरण

से एक गुप्त सामर्थ्य पाता रहता है, जिसके कारण वह शत्रुओं के सम्मुख अजेय, स्थिर, साहसपूर्ण हृदय से खड़ा रहता है। सहिष्णुता कुछ तो शारीरिक होती है, किन्तु मुख्यतः यह मानसिक दृढ़ता पर निर्भर है। सहिष्णु व्यक्ति मान-अपमान, हानि-लाभ, हर्ष-विषाद में विचलित नहीं होता। वह प्रलोभन, क्षुधा, सर्दी, गर्मी, वासना, उत्तेजना पर काबू पा लेता है।

अपने जीवन में सहिष्णुता का अभ्यास करें। कोई तीखे वचन भी कहे, तो भी अपने आपको सम्भालें। क्रोध को, उत्तेजना को शान्ति से शीतल करदें। वासना की आंधियों को शान्ति से निकल जाने दें। यदि चरित्र में कोई व्यसन—मद्यपान सिगरेट अपव्यय की आदत आ गई है तो उसे त्यागने में सहिष्णुता प्रदर्शित करें।

यह संसार कष्ट, अभाव, दुःख, खतरों, चोट, पीड़ा और रोग से मिल कर बना है। हम में से प्रत्येक को इन कड़वी चीजों का हिस्सा मिलना है। कायर डर कर इनसे भाग निकलते हैं, जब कि सहिष्णु साहस से इन पर विजय प्राप्त करते हैं। आप निश्चय ही सहिष्णु हैं। वीरता से कष्टों और अभावों से लड़ सकते हैं। मन में ऐसी धारणा शक्ति बढ़ाइए कि आप आसानी से अस्त-व्यस्त न हो सकें। मानसिक सन्तुलन बना रहे।

जब आप मन में ठण्डक और चित्त को शान्त रखते हैं, तो विवेक सर्वोत्कृष्ट रूप में कार्य करता है। हमें नए नए उपयोगी विचार प्राप्त हो जाते हैं। जो जरा जरा सी बात में उखड़ता या लड़ता झगड़ता रहता है, क्रोधित होकर मन को उत्तेजित करता है, वह एक प्रकार के पागलपन में पड़ा रहता है। ऐसे उत्तेजक स्वभाव पर विश्वास नहीं किया जा सकता।

सन्तोष वृत्ति मन को सन्तुलित रखने में सहायक दैवी वृत्ति है।

लोभ के कारण प्रायः मन का सन्तुलन अस्थिर रहता है। लोभ हृदय में सुलगने वाली एक ऐसी अग्नि है जो मनुष्य का क्षय कर डालती है। लोभ को मारने की दवाई सन्तोषवृत्ति है। लोभ की अग्नि से दग्ध व्यक्ति संतोष की गङ्गा में स्नान कर शीतलता का अनुभव करता है। मोक्ष-प्राप्ति के चार उपाय हैं—शान्ति, सन्तोष, सत्सङ्ग और विचार। इनमें सन्तोष सब से शक्तिशाली दैवी सम्पदा है। यदि किसी प्रकार सन्तोष वृत्ति को धारण कर ले तो शान्ति, सत्सङ्ग और विचार स्वयं आ सकते हैं।

मन बड़ा चञ्चल होता है। एक इच्छा पूर्ण हुई तो दूसरी पर कूदता है, फिर तीसरी को पकड़ता है। यह चञ्चलता-अस्थिरता-कम्पन संयम और संतोष से काबूमें आ जाते हैं। राजयोग के अन्तर्गत संतोष एक महत्वपूर्ण नियम है। सुकरात ने इसका वर्णन बड़े ऊँचे रूप में किया है। संतोष से मनकी शान्ति एवं संतुलन स्थिर रहता है।

कुछ व्यक्ति संतोषवृत्ति को आलस्य और भाग्यवादी बनाने की वृत्ति मान कर बड़ा अत्याचार करते हैं। संतोष तो एक सात्विक वृत्ति है। यह हमें कर्तव्य पथ पर चलाती है और पश्चात् हमें मानसिक शक्ति एवं शान्ति प्रदान करती है। यह हमारी मनोवृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाता है और हमें स्वार्थ, लोभ और अन्य सांसारिक वृत्तियों से मुक्त करता है। हमारे सन्त महात्मा फकीर भिक्षुगणों ने अल्प में सन्तोष किया है, आत्म ज्ञान प्राप्त किया है। आत्म-सन्तोषी व्यक्ति संसार की आकर्षक किन्तु नश्वर वस्तुओं को घृणा से देखना सिखाता है। सन्तोष से वैराग्य, विवेक, और सद्विचार की पद्धति आती है। लोभ जड़ मूल से नष्ट हो जाता है।

"मैं सन्तुष्ट हूँ। तनिक से लोभ से विचलित नहीं होता। क्रोध नहीं करता। अपने आप में पूर्ण हूँ। मुझे कोई आवश्यकता नहीं है।

मेरे पास यथेष्ट है"—ऐसे संकेतों को लेने से मनुष्य में आन्तरिक संतुलन आता है। आत्मसंतोषी जो कुछ उसके पास है उसीसे संतुष्ट रहता और अर्थ के अनर्थ से मुक्त रहता है।

क्रोध, ईर्ष्या और द्वेषभाव संतुलन को भङ्ग करने वाले पाशविक विकार हैं। इनसे मुक्ति के लिए क्षमा महौषधि है। जिसने आपका बुरा भी किया है उसके प्रति भी क्षमा भाव रखना, उसकी अज्ञानता पर करुणा दिखाना मन को संतुलित रखता है। क्षमावान् दया, प्रेम और सहानुभूति से परिपूर्ण रहता है। यदि आप क्षमा का अभ्यास करें तो आध्यात्मिक दृष्टि से सशक्त बन सकते हैं, अपने क्रोध ईर्ष्या द्वेष के आवेशों को कन्ट्रोल कर सकते हैं। जो शक्ति उत्तेजना में नष्ट होती है वह बच सकती है। जिसे आप क्षमा करें उसकी चर्चा किसी से न करें, अन्यथा आपका अहंभाव समझा जायगा।

महर्षि पातञ्जलि ने व्यावहारिक जीवन में सफलता की कुञ्जी दे दी है :—

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुखपुण्यापुण्य-
विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्। (समाधिपाद ३३)

अर्थात्—हमें चाहिए कि दूसरों से मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा वृत्तियों को काम में लाएं। सुखी मनुष्यों से प्रेम करें, दुखियों एवं सन्तों के प्रति दया भाव दिखाएँ, पुण्यात्माओं के प्रति प्रसन्नता और पापियों की ओर से उदासीन रहें।

शान्ति धारण करने का अभ्यास करें। आपका मन, इन्द्रियां और भावनाएं शान्त रहें। वातावरण यदि कोलाहलपूर्ण भी हो तो भी अन्तर्वृत्तियों को शान्त रखने की चेष्टा करें।

शान्ति हमारी आत्मा का गुण है। हमारी सब वृत्तियां शान्ति में आकर संतुष्ट हो जाती हैं। मन में संकल्प-विकल्पों का नाश होता है।

निस्वार्थता, अनिच्छा, वैराग्य, निर्मोह, अहं से मुक्ति ईश्वर की ओर वृत्ति इच्छाओं का संयम हमें आन्तरिक शांति और मन का संतुलन प्रदान करते हैं ।

यदि हम अपने परिवार, मुहल्ले, शहर, प्रांत और देश भर में शान्ति का अभ्यास कराएं, और सभी इसके लिये प्रयत्न करने लगें, तो विश्व भर में शान्ति स्थापित हो सकती है । प्रार्थना, जप, कीर्तन, चिन्तन और सद्विचारों को जितना फैलाया जाय, उतना ही लाभ हो सकता है ।

शान्ति से बोलें, शांति से चलें और शान्ति से कार्य करें । परमेश्वर शांति का अवतार है । ईश्वरीय तत्त्वों को मन से निकालें । पहले मनुष्य अपने मन में शान्ति धारण करे फिर बाह्य परिस्थितियों की शिकायत करे । जितना आप बाह्य पदार्थों से अपना सम्बन्ध तोड़ कर आगे बढ़ेंगे, उतनी ही मनःशान्ति प्राप्त होगी ।

अनर्थकारी ग़लतफ़हमियों से सदा बचें !

मानव समाज के अनेक जटिल झगड़ों का कारण यह है कि हम दूसरे के दृष्टिकोण को नहीं समझ पाते हैं। हम दूसरों को नापते हुए उनमें अपने आदर्शों, मन्तव्यों, विचारधारा एवं दृष्टिकोणों का आरोप (Projection) करते हैं। जब कवि कहता है 'अहह ! पुष्प विहँस रहे हैं; कलिकाएँ नृत्य कर रही हैं, या हवाएँ गा रही हैं।' तो इन वाक्यों में कवि अपनी मनोभावनाओं का आरोप ही करते हैं। आरोप की प्रवृत्ति मानव-स्वभाव की एक निर्बलता है। वह चाहे कितना ही पृथक् रखने का प्रयत्न करे, निज व्यक्तित्व को किसी न किसी रूप में प्रकाशित कर देता है।

आरोप की प्रवृत्ति के कारण प्रायः भ्रांति (ग़लतफ़हमी) नामक मनासिक जटिलता की उत्पत्ति होती है, जो महाअनर्थकारी फलों को उत्पन्न करती है। भ्रांति एक प्रकार का मनोमालिन्य है, जो विवेक-बुद्धि को कुंठित कर ईर्ष्या जैसे विषैले मनोविकार को उत्तेजित करता है। यह अहं का विस्फोट तथा दूसरे के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण की कमी का बोधक है।

एक उदाहरण लीजिए। शैक्सपीयर का प्रसिद्ध नाटक 'ओथैलो' एक बड़ी भ्रान्ति पर आधारित है। ओथैलो एक वीर नायक है, जिसका विवाह एक परम सुन्दरी स्त्री डेस्डीमोना से हुआ है। डेस्डीमोना

जितनी सुन्दर है, उतनी ही पतिव्रता, शीलगुणसम्पन्ना साध्वी स्त्री भी है। फिर भी तनिक से संदेह से ओथैलो अपनी पत्नी के चरित्र पर ही संदेह करने लगता है। वह उसे स्पष्ट नहीं कहता कि उसे डेस्डीमोना के चरित्र पर सन्देह है। ओथैलो छोटी-छोटी अनेक बातों को ध्यानपूर्वक देख कर पत्नी के चरित्र के विरुद्ध भाव अपने मन में एकत्रित करता जाता है। बात कुछ भी नहीं थी। सब कुछ एक मनोविकार मात्र था। अंत में ओथैलो का संदेह इतना बढ़ जाता है कि ईर्ष्या और प्रतिशोध से अंधा होकर वह शीलवती पत्नी की हत्या कर बैठता है। एक भ्रांति जो एक प्रकार की मानसिक छायामात्र थी, हत्या का कारण बन जाती है।

प्रायः देखा गया है कि चुपचाप मन में कोई बात गुप्त रखकर प्रकट न करने से हम दूसरे को उस के पक्ष में कुछ कहने का अवसर नहीं देते। हम कुछ सोचते हैं, दूसरा कुछ और विचार करता है। दोनों पक्ष भिन्न-भिन्न मनोभावों के अनुसार एक दूसरे को देखते चलते हैं। माता-पुत्र, पति-पत्नी, मालिक-नौकर, दूकानदार-ग्राहक, अफ़सर तथा उनके नीचे कार्य करने वाले क्लर्क, अध्यापक-शिष्य, उपदेशक-श्रोता इत्यादि एक दूसरे के प्रति नाना प्रकार की छोटी बड़ी भ्रांतियों से आक्रान्त रहते हैं, जिन का विष अन्दर ही अन्दर ईर्ष्या, क्रोध और प्रतिशोध उत्पन्न कर मानसिक संतुलन को नष्ट कर देता है।

भ्रांति मानव की संकुचित वृत्ति की द्योतक है। इस की उत्पत्ति का मूल कारण दूसरों के विषय में संकुचित वृत्ति धारण करना है। हम दूसरों को विद्या, बुद्धि, कार्यशक्ति, जागरूकता, सचाई, ईमानदारी, प्रेम, पवित्रता, चरित्र-दृढ़ता में अपने से नीचा समझते हैं तथा निरन्तर छिद्रान्वेषण में निरत रहते हैं। पर छिद्रान्वेषण की संकुचित मनोवृत्ति के कारण हमें उनमें गन्दगी ही दृष्टिगोचर होती है।

मनोविज्ञान का यह व्यावहारिक नियम है कि जैसे हम स्वयं हैं, दूसरे भी हमें वैसे ही सुन्दर-असुन्दर, पवित्र-अपवित्र, भले-बुरे प्रतीत होते हैं। भ्राँतियों में फँसने वाले व्यक्ति प्रायः दूषित संदेह वृत्ति के शिकार होते हैं। संदेह की निर्बलता उनके मानसिक संस्थान में निवास करती है। उसी का आरोप वे दूसरों पर किया करते हैं। इसी से भ्रांतियां एक के बाद दूसरी, फिर तीसरी उत्पन्न होती रहती हैं।

भ्रांति की सब से बुरी बात यह है कि दोनों पार्टियाँ अपना-अपना पक्ष तर्कसम्मत सत्य से परिपूर्ण समझती हैं। दूसरे का दृष्टिकोण ही मिथ्या और असत्य प्रतीत होता है; हम उसी की ग़लतियाँ दिखाने में अधिक उत्सुकता दिखाते हैं। अपनी अविवेकपूर्ण स्थिति, तर्क तथा दृष्टिकोणों के प्रति हमारी बुद्धि जागरूक नहीं होती। हम सब कुछ अपने पक्ष में ही देखते हैं, विपक्ष में अनेक बातें होते हुए भी उनकी ओर से नेत्र मूंद लेते हैं। दूसरे को दण्ड देने की भावना धीरे-धीरे हमारे अन्तःकरण में सचेतन होती जाती है।

भ्रांति की मनःस्थिति में प्रायः हमारी भावना उद्दीप्त रहती है। भावना तर्क नहीं चाहती। उसका तो एक प्रवाह है जो इतना तीव्र होता है कि विरोध में होने वाले समस्त तर्क और सत्यों को बहा देता है। नीर-क्षीर-विवेक नष्ट हो जाता है। भावुक व्यक्ति अति संवेदन के कारण इस रोग से अधिक आक्रांत रहते हैं।

जिस प्रकार रबर के गुब्बारे में हवा फूँकने से वह बढ़ता रहता है; जरा सा छेद होने से तमाम हवा निकल कर साधारण स्थिति में आ जाता है; वही प्रकृति भ्रांति दूर होने पर होती है। जहाँ एक दूसरे का दृष्टिकोण समझा कि मतभेद दूर हुआ, नासमझी और उत्तेजना का अन्धकार विलीन हुआ, विवेक और शान्ति का प्रकाश उदित हुआ। जब दो हृदयों के एकत्रित घृणित मनोविकार निकल जाते हैं, तो उन्हें ज्ञात होता है कि जिस बात के लिए वे भयंकर प्रतिशोध लेना चाहते

थे, रक्त के प्यासे थे, वह साधारण-सी बात थी। यदि उत्तेजनावश कुछ कर बैठते, तो कैसा महा अनर्थ हो जाता!

दूसरों के विषय में कुछ भी निर्णय करने से पूर्व यह ध्यान रखिये कि आप के मन की अवस्था शान्त, विकारहीन और निष्पक्ष है या आप किसी दुष्ट मनोविकार से आक्रान्त हैं? साम्प्रदायिकता, अतिभावुकता, दूसरे की परिस्थिति को न समझना सही विचार की बाधाएँ हैं।

जब आप समझें कि अपने मित्र, भाई, पत्नी या अन्य किसी व्यक्ति के प्रति आप के मन में दुर्भाव उत्पन्न होकर वैर तथा ईर्ष्या का स्थान लेते जा रहे हैं; किसी के प्रतिक्रोध तथा प्रतिशोध की भावनाएँ मनः-क्षेत्र में उत्पन्न हो रही हैं, तो तनिक सावधान हो जाइये। जल्दी में कुछ भी न कर बैठिये अन्यथा आप उत्तेजना में महा अनर्थकारी कार्य कर सकते हैं।

मन को संतुलित कीजिये, वृत्तियों को शांत रखिये, और कुशल सारथी की भांति पाँचों इन्द्रियों को दृढ़ता से वश में रखिये। अपने ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध उत्तेजना का मनःविश्लेषण कीजिए। मालूम कीजिए कि आखिर वह कौन-सी बात है जिसके कारण आप किसी व्यक्ति के प्रति अशोभनीय भावनाएँ रखते हैं? वह कितने अंशों में सत्य है? आपने उसकी बुराइयों, अत्याचारों, बेईमानी, अपवित्रता, घृणित सम्बन्धों के विषय में किस सीमा तक सही जानकारी प्राप्त की है? कहीं पक्षपाती, दूसरे के शत्रुओं के पंजे में तो आप नहीं आ गये हैं? दूसरे की मनःस्थिति, दृष्टिकोण, शक्ति, परिस्थिति इत्यादि को समझ लेने से बहुत-सी भ्रांतियाँ दूर हो सकती हैं। जब कभी भ्रांति का भय हो, स्पष्टवादिता से काम लेना चाहिये और अपने पक्ष की सफाई देकर दूसरे पक्ष का तर्क सुन कर मानसिक गुत्थी को खोल डालना चाहिए।

आलोचनाओं से परेशान न रहें !

कुछ व्यक्ति घर, समाज, वर्ग या मित्र पड़ोसियों की आलोचनाओं के कारण बड़े परेशान रहते हैं। संसार में भिन्न-भिन्न रुचि एवं दृष्टिकोण के व्यक्ति निवास करते हैं। उनके आदर्श भिन्न हैं, रहने बैठने तथा बात-चीत करने के ढंग भी अलग-अलग हैं। फिर आप यह क्यों आशा करते हैं कि जो कुछ आप कहेंगे, सोचेंगे अथवा कार्य करेंगे वह सभी को पसंद आएगा? यह भाव मन से निकाल दीजिए कि आप प्रत्येक व्यक्ति को प्रसन्न संतुष्ट, और अपने तर्कों से सुखी रख सकेंगे। कोई भी सब को प्रसन्न नहीं कर सका है।

सन् १६२६ में शिकागो में एक आश्चर्यजनक घटना घटी। तीस वर्ष की आयु का एक व्यक्ति अमेरिका की एक यूनीवर्सिटी का प्रेसीडेण्ट बना दिया गया। पुराने शिक्षाशास्त्रियों ने इसका बड़ा प्रतिरोध किया। यह व्यक्ति राबर्टमेनर्ड हचिन्सन था। लोगों ने यह-वह बहुत कहा, कटु आलोचनाएँ कीं, बुरा-भला कहा, समाचारपत्रों में आलोचनाएँ आईं। जिस दिन वे यूनिवर्सिटी के प्रेसीडेण्ट बने थे उसी दिन एक मित्र ने उनके पिता जी से कहा, "आपके पुत्र के विषय में अखबारों में कटु आलोचनाएँ आ रही हैं। आपके पुत्र की अनेक झूठी सच्ची त्रुटियाँ निकाली जा रहीं हैं।" पिता ने कहा, "कोई भय नहीं। वे सब मिथ्या हैं।" और कुछ काल के पश्चात् वे स्वयं विलुप्त हो गईं।

संसार की प्रवृत्ति कुछ ऐसी है कि जिस व्यक्ति से अन्दर ही अन्दर

डरते हैं, उसकी कटु आलोचनाएँ कर वे अपने आपको उसकी अपेक्षा महत्तर प्रमाणित करना चाहते हैं। आलोचना उसी व्यक्ति की की जाती है जिस में कुछ बड़प्पन है, कुछ गुण, ख्याति या मौलिकता है।

जो आलोचना झूठी है, उससे घबराने की आवश्यकता नहीं है। ये स्वयं बन्द हो जायँगी। आप दृढ़ता से अपने काम में लगे रहिए। स्मरण रखिए, आपके विरुद्ध जो कुछ कहा या लिखा जाता है, वह बहुत कम लोग सुनते या उस पर ध्यान देते हैं। संसार के व्यक्तियों को न तुम में रुचि है, न मुझ में। उन्हें अपने तथा अपनी समस्याओं में रुचि है। दिन-रात उन्हें अपने स्वार्थों से अवकाश नहीं है। उन्हें अपने शिरःपीड़ा की तुम्हारी या मेरी मृत्यु की अपेक्षा अधिक चिन्ता है। चाहे आपकी कितनी भी आलोचना हो, आप आत्मग्लानि में न फँसें। ईसा महान् का उदाहरण स्मरण रखें, जिन्हें उनके बारह भक्त शिष्यों में से एक ने केवल १२ डालर के लिए धोखा दिया था।

चाहे आप लोगों की आलोचना करें, या न करें वे आपकी और हमारी त्रुटियाँ निकालने से बाज नहीं आयेंगे। आप एक काम करें इनकी ओर से मुख मोड़ लें। उधर तनिक भी ध्यान न दें। मिथ्या आलोचनाओं से मानसिक संतुलन हाथ से न जाने दें। आलोचना करने वालों को आप सब से बड़ी सज़ा दे सकते हैं, वह यह है कि उस की ओर ध्यान न दें। उसके घृणात्मक संकेतों को ग्रहण ही न करें। उल्टे उनकी ओर हँस दें।

अपने प्रति सच्चे रहें :—

हमारी चिन्ता का एक कारण वह बाह्य प्रदर्शन बाहरी लिफाफा है, जो हम ऊपर से आन्तरिक स्वरूप को छिपाने के लिए, धारण किये रहते हैं। दूसरे शब्दों में, हम ऐसे बहुरूपिये हैं, जो सभ्यता, दिखावा, बनाव, श्रृङ्गार धोखा देने के लिए समाज में अपना अतिरंजित स्वरूप

प्रस्तुत किया करते हैं। हम अपने प्रति सच्चे नहीं हैं। हम अपनी वास्तविकता को मिथ्याचार के रंग में रंगे रहते हैं। हम ऐसा अभिनय करते हैं, जैसे हम वास्तव में नहीं हैं।

मैं अपने एक पड़ोसी को जानता हूँ, जो मेजर थे। पाँच सौ रुपया वेतन, घर का मोटर और तमाम बाह्य प्रदर्शन का लिफ़ाफ़ा उनके पास था, जिससे आप अनायास ही इस भ्रम में पड़ सकते हैं कि आदमी वास्तव में अमीर है। मेजर साहब का परिवर्तन हुआ, तो उनकी कलई खुली। उन के ऊपर न जाने कितना ऋण था कि उनके कर्ज में मोटर बिकी। किराया न अदा कर सके तो उनके गहने बिके। किसी प्रकार शहर से चले गये लेकिन नोन, तेल, लकड़ी के बिलवाले बनियों ने पीछा घर तक न छोड़ा और उनके पीछे लगे रहे। यह दुरवस्था उन व्यक्तियों की होती है, जो अपने आप को अपनी अवस्था से बढ़ा चढ़ा शान-शौक़तवाला बाह्य स्वरूप धारण किये रहते हैं। आर्थिक चिन्ताओं से मुक्ति के लिए आप सदैव अपने प्रति सच्चे रहिए। वैसा ही बाह्यस्वरूप धारण कीजिये जैसे आप वास्तव में सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक दृष्टियों से हैं।

डा० जेम्स गोर्डन कहते हैं, 'अपने प्रति सच्चे रहने, जैसे वास्तव में हैं वैसा स्वरूप रखने का नियम इतना पुरातन है जितना इतिहास; और इतना सार्वभौमिक है जितनी मानव जाति।' एंजिलो पादरी लिखते हैं–"उस व्यक्ति से अधिक दुःखी और कष्ट में कोई नहीं रहता, जो अपने शरीर तथा मनसे, जैसा वह नहीं है, इससे अतिरंजित रूप समाज में रखने का प्रयत्न करता है।"

पाल बौयटन ने एक पुस्तक लिखी है, 'नौकरी पाने के छः उपाय।' इस पुस्तक में उम्मीदवारों की गलतियों का जिक्र करते हुए वे लिखते हैं, किसी भी जगह के लिए अर्जी भेजते समय उम्मीदवार यह बड़ी ग़लती करते

हैं कि जैसे वे नहीं हैं, वैसे अतिरंजित, मिथ्या, स्वरूप को दूसरों के समक्ष प्रस्तुत करने की अनधिकार चेष्टा करते हैं। बातचीत में सचाई से सच्चा स्वरूप परीक्षकों के सम्मुख रखने के स्थान पर वे झूठी बनावटी बातें बना कर उन्हें धोखा में डालना चाहते हैं। लेकिन यह मिथ्या व्यक्तित्व दूर तक चल नहीं पाता और वास्तविकता प्रकट हो जाती है।' कोई व्यक्ति खोटे सिक्के को क्या पसन्द करेगा?

विलियम जेम्स का यह वक्तव्य सत्य है कि 'हमें जैसा उन्नत और परिपक्व होना चाहिए, हम उसके आधे ही विकसित रहते हैं। हम अपने जीवन में मानसिक और शारीरिक शक्तियों का बहुत कम उपयोग कर पाते हैं। मनुष्य अपने जीवन की शक्तियों का पूरा-पूरा सद्व्यय किये बिना ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।'

वास्तव में, आप में, हम तुम प्रायः सभी व्यक्तियों में ऐसे-ऐसे अनेक गुप्त रत्न अविकसित रूपों में पड़े हुए हैं, जिसका हमें कुछ ज्ञान नहीं हैं। हम सचाई से अपने मस्तिष्क के गुप्त गुणों की परीक्षा नहीं करते। दूसरों का अनुकरण करने से कुछ बनने वाला नहीं है। अनुकरण एक प्रकार की आत्महत्या है, जिसके कारण हमारी विशेषताएँ दम तोड़ देती हैं, पनप नहीं पातीं। प्रकृति ने आपको जो विशेष गुण प्रदान किये हैं, उन्हें आप विकसित करें और अपने प्रति सच्चे रहें। अपना वही स्वरूप समाज में रखें, जो आप निभा सकें। अपनी विशेषताएँ सर्वोत्कृष्ट रूप में विकसित कर आप चिन्तामुक्त हो सकते हैं।

शक्तियां एकत्रित करते चलिए !

मनुष्य धनी कब बनता है ? उत्तर में आप कहेंगे कि जो व्यक्ति कमाता खूब है, पर व्यय कम करता है और थोड़ा-थोड़ा रुपया संचित करता जाता है, वह अमीर बन जाता है । बात वास्तव में ठीक है संचय करना । चीज़ों, वस्तुओं, शक्तियों को एकत्रित करने से आप मज़बूत बनते हैं । साइकिल या मोटर का रबर का ट्यूब कितना पतला और मुलायम होता है, लेकिन जब उसमें आप दबा-दबा कर हवा संचित करते हैं, तो उसमें इतनी शक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है कि वह मोटर लारी से सैकड़ों मन भार एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाने में समर्थ हो जाता है । यदि थोड़ी-थोड़ी शक्तियाँ दैनिक जीवन से बचाई जाती रहें, तो किसी ज़रूरत के समय से संचित शक्तियाँ हमारे बड़े काम की सिद्ध होती हैं ।

हम शक्ति के रूप में तीन देवियों की आराधना करते हैं—अष्ट-भुजा दुर्गा, सरस्वती और लक्ष्मी । दुर्गा हमारी शारीरिक शक्ति की प्रतीक है । सरस्वती हमारी बौद्धिक और मानसिक शक्ति की और लक्ष्मी आर्थिक शक्तियों की प्रतीक है । इस प्रकार हिन्दू धर्म ने तीनों प्रकार की शक्तियों के प्रति हमें प्रारम्भ से ही जागरूक कर दिया है । आशा यह की जाती है कि प्रत्येक हिन्दू दुर्गा, सरस्वती और लक्ष्मी की त्रिमूर्ति की आराधना कर तीनों प्रकार की शक्तियों के प्रति सतत चेष्टा-वान् होगा । आकस्मिक आवश्यकताओं के लिये हमें उक्त तीनों प्रकार

की शक्तियों को संचित रखना आवश्यक है। हमें अपने मन की सब शक्तियों—एकाग्रता, संतुलन, विवेक, बुद्धि, भावना को जाग्रत रखना चाहिए।

संतुलित चरित्र वाला व्यक्ति आपत्तिकाल या आवश्यकता के समय किंकर्तव्यविमूढ़ नहीं होता। अधिक काम में भी वह अपनी शक्तियों का पूर्ण परिचय देता है, जब कि ऊपरी दृष्टि से मोटे ताज़े व्यक्ति पीछे रह जाते हैं। ज़रा कार्याधिक्य हुआ कि उनके प्राणों पर आ बनती है।

बड़े व्यापारी उन व्यक्तियों को पसंद करते हैं जो आपत्ति काल में जब मज़दूरी भी कम हो उसी उत्साह से कार्य में संलग्न रहते हैं जितने वे आराम के समृद्धिशाली दिनों में थे। प्रारम्भिक काल में जब व्यापार आरम्भ ही किया जाता है। उसे आगे विकसित करने के लिए बड़े परिश्रमी, संयमी और शक्तिशाली व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है। व्यापार में मनुष्य का पुस्तकीय ज्ञान, शक्ति या अनुभव कार्य नहीं करता है, प्रत्युत उसे समुन्नत बनाने वाला वह भाव है जो उसके मन में पुनः-पुनः यह भावना उत्पन्न करता है कि ख़तरे के समय भी वह अपने कार्य को संभाल सकेगा। बची हुई शक्ति, संचित सम्पत्ति, एकत्रित ज्ञान वे चीज़ें हैं जो मनुष्य को सफल व्यापारी बनाती हैं।

आप में संचित शक्तियाँ कितनी हैं? ज़रूरत के समय के लिए आपने कितनी शक्तियाँ इकट्ठी कर रखी हैं? जो व्यक्ति ज़रूरत के समय के लिए अपनी शक्तियां एकत्रित नहीं रखता, वह मूर्ख है।

वे कौनसी शक्तियाँ हैं, जिनके संचय की आवश्यकता है। इसके उत्तर में कहा जायगा कि सर्वप्रथम हमें अपनी प्राणशक्ति का अधिकाअधिक संचय करना चाहिए। प्राणशक्ति के द्वारा ही हमारा इस जगत् से नाता है। जब तक प्राण तब तक संसार। प्राणों का जो कोष